Chap-1

प्रथम अध्याय

संस्कृत और हिन्दी नाटक का उद्भव, अवधारणाएँ एवं विकास

नाटक का उद्भव एवं अवधारणाएँ

नाटक : परिभाषा एवं स्वरूप

संस्कृत नाटक का विकास

हिन्दी नाटक का विकास

तुलनात्मक अध्ययन

सन्दर्भानुक्रम

प्रथम अध्याय

''नाटक का उदभव, एवंअवधारणाएं''

अंग्रेजी में जिस "ड्रामा" (Drama) शब्द का प्रयोग होता है उसी अर्थ में संस्कृत साहित्य मे 'रूपक' शब्द का प्रयोग होता है। वैसे इस आंग्ल शब्द का अर्थ 'नाटक' शब्द के द्वारा किया जाता है किन्तु नाटक रूपकों का भेद मात्र है। संस्कृत वाङ्मय में काव्य के दो भेद माने जाते हैं---

1- दृश्य काव्य

2- श्रव्य काव्य।

''दृश्यश्रव्यत्व भेदेन पुन: काव्यं द्विधामतम्।
दृश्यंतत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्त रूपकम्।।''1

दृश्यकाव्य का आनन्द उसके अभिनय को देखकर प्राप्त किया जाता है, इसी दृश्य काव्य को ही 'नाटक' कहा जाता है। नाटक संस्कृत में रूपक शब्द से जाना जाता है। दृश्य काव्य में मूल का आरोप होता है इसलिए रूपक माना जाता है। रूपक की परिभाषा दशरूपककार धनंजय ने इस प्रकार दी है----

''रूपकं तत्समारोपात'' ''रूपारोपात्तरूपकम्''2

अर्थात एक व्यक्ति का दूसरे पर आरोप करना ही रूपक कहलाता है। रूपक के दस भेद माने जाते हैं जो इस प्रकार है----

नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः।
व्यायोग समवकारौ वीथ्यंकेहामृगा इति।।''3

1- नाटक 2- प्रकरण 3- भाण 4- प्रहसन 5-डिम 6-व्यायोग 7- समवकार 8- वीथि 9- अंक 10-ईहामृग। नाटक दशरूपकों में से एक है। पाणिनि न नाटक की उत्पत्ति नट धातु से मानी है जिसका अर्थ है सात्विक भावों का प्रदर्शन। यही कारण है कि अभिनय को ही नाटक कहा जाता है। ''अवस्थानुकृतिर्नाट्यं''4 अर्थात अवस्था के अनुकरण को ही नाट्य कहते हैं ।

जहां काव्य में वर्णित धीरोदात्त, धीरोद्धत्त, धीरललित और धीरप्रशान्त प्रकृति के नायकों का आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्विक इन चार प्रकार के अभिनयों द्वारा अवस्थानुकरण किया जाता है, वह नाट्य है। अवस्थानुकरण अर्थात चाल-ढाल, वेश-भूषा, आलाप-प्रलाप आदि के द्वारा पात्रों की प्रत्येक अवस्था का अनुकरण। नाटक का सम्बन्ध 'नट' धातु से होने के कारण उसकी विभिन्न अवस्थाओं की अनुकृति को ही नाट्य कहते हैं। इस प्रकार 'नट' ('अभिनेता') से संबधित होने के कारण ही रूपक नाटक कहलाता है। नाट्य शास्त्र के अनुसार नाटक के तीन अंग माने गये हैं----

1. <u>नृत्त</u> - जो ''काललयाश्रयम''5 होता है अर्थात इसमें गात्र (पदादि) का संचालन ताल-लय पर आधारित होता है।

2. <u>नृत्य</u> - ''भावाश्रयं नृत्यम्''6 कहकर इसमें गात्र संचालन के अतिरिक्त भावों का अभिनय भी सम्मिश्रित किया जाता है।

3. <u>नाट्य</u> - ''रसाश्रयनाट्यं''7 से स्पष्ट है कि नाट्य में रस योजना का प्रमुख स्थान है। 'नाटक' इन तीनों का आवश्यकतानुसार योजन करने वाला है।

नाटक के वास्तविक स्वरूप को समझने जानने तथा पहचानने के लिए नाटक के उन तत्वों को जानना अत्यावश्यक है, जिनके आधार पर वास्तविक स्वरूप को जाना जा सकता है। नाटक के मूलभूत तत्वों की चर्चा दशरूपककार धनंजय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक तथा आचार्य विश्वनाथ ने अपने साहित्यदर्पण में बड़े सुचारू ढंग से किया है। धनंजय ने रूपक के तीन भेद माना है---

1. वस्तु (कथावस्तु)
2. नेता
3. रस।

1. कथावस्तु

कथावस्तु के मुख्य दो भेद होते है।8 प्रासंगिक कथावस्तु तथा आधिकारिक कथावस्तु नाटक की जो मुख्य कथावस्तु होती है उसे आधिकारिक कथावस्तु तथा उसके अंगभूत अर्थात उससे जुड़ी हुई कथा को प्रासंगिक कथावस्तु कहा जाता है।

प्रासंगिक कथावस्तु के भी दो प्रकार होते हैं---पताका तथा प्रकरी। जो कथा काव्य या रूपक में बराबर चलती रहती है उसे पताका कहते हैं जैसे रामायण में सुग्रीव की कथा, तथा जो कथा काव्य या रूपक में कुछ समय तक चलकर बन्द हो जाती है उसे प्रकटी कहते हैं। जैसे रामायाण में शबरी की कथा।

<u>अर्थप्रकृतियां</u> <u>अवस्थाएं</u> <u>सन्धियां</u>

बीज	+	आरम्भ	=	मुख
बिन्दु	+	यत्न	=	प्रतिमुख
पताका	+	प्राप्त्याशा	=	गर्भ
प्रकरी	+	नियताप्ति	=	विमर्श
कार्य	+	फलागम	=	निर्वहण

अर्थप्रकृतियां

अर्थप्रकृतियां 5 प्रकार की होती हैं।

''बीज बिन्दु पताकारव्य प्रकरी कार्यलक्षणा:।
अर्थप्रकृतय: पच्च ता एता: परिकीर्तिता:।।''9

यहाँ पर नाटककार का अर्थ से तात्पर्य वस्तु के फल से है। धनिक ने भी अर्थप्रकृति को उद्देश्य सिद्धि का हेतु ही बताया है (प्रयोजनसिद्धिहेतव:) उद्देश्य किस प्रकार का हो सकता है वह कथा या वस्तु पर आधारित होता है।

बीज

धनंजय के मतानुसार--''स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा।''10
अर्थात उस स्वल्पदृष्टि बात को बीज कहा जा सकता है जो अन्तिम अवस्था में रूपक के पूर्ण फल का उद्देश्य होता है) जिस प्रकार जमीन में एक बीज को डालने के बाद आगे चलकर उसी से तना, डाली, पत्ते आदि से युक्त एक विशाल वृक्ष की संरचना होती है

लेकिन इस विशाल वृक्ष का मूल बीज ही होता है ठीक वही कार्य रूपक में बीज अर्थात प्रारम्भिक अवस्था का होता है।

बिन्दु

बिन्दु वह अर्थप्रकृति होती है जो कथा की समाप्ति के अवसर पर प्रधान कथा से जुड़कर कथा के तारतम्य को बनाये रखती है जिस प्रकार जल मे तेल के पड़ने से तेल विभिन्न बिन्दुओं में फैल जाता है उसी प्रकार नाटक में बिन्दु अर्थप्रकृति के मिलने से कथा का तारतम्य विस्तृत और सुदृढ़ हो जाता है।

पताका

वह अर्थप्रकृति होती है जो नाटक में मुख्य कथा होती है। जैसे रामायण में राम का प्रसंग।

प्रकरी

वह अर्थप्रकृति है जो नाटक की गौण कथा होती है जैसे रामायण में शबरी का प्रसंग।

कार्य

रूपक में फल प्राप्ति के उद्देश्य से जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है उसे कार्य अर्थप्रकृति कहते हैं।

6
अवस्थाएं

''अवस्था पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्ति फलागमाः।।11

जिस प्रकार प्रयोजन की सिद्धि के आधार पर 5 अर्थप्रकृतियों बतलायी गयी हैं उसी प्रकार फल की इच्छा पूर्ण होने के लिए व्यक्ति द्वारा जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है वे अवस्थाएं कहलाती हैं जो 5 हैं--- आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति तथा फलागम।

आरम्भ

फल की प्राप्ति की इच्छा से शुरू किये गये कार्य की प्रारम्भिक अवस्था को आरम्भ कहते हैं।

यत्न

फल की प्राप्ति हेतु जो भी उपाय व्यक्ति द्वारा किये जाते हैं उसे यत्न कहते हैं।

प्राप्त्याशा

विभिन्न प्रकार के प्रयत्नों के बावजूद भी जहाँ पर फल प्राप्ति की आशा पूर्ण न बल्कि दुर्भाग्यवश किन्हीं कारणों से अनिश्चित या संदेह पूर्ण हो वह स्थिति प्राप्त्याशा कहलाती है।

नियताप्ति

फल प्राप्ति में जिन बाधाओं के आने से फल प्राप्ति में संदेह हो गया था जब वे विघ्न समाप्त हो जाते हैं और सफलता निश्चित हो जाती है तो उसे नियताप्ति कहा जाता है।

फलागम

अंतिम अवस्था में जब व्यक्ति पूर्ण रूपेण अपने वांछित फल की प्राप्ति कर लेता है तब उसे फलागम कहते हैं।

सन्धि

अर्थप्रकृति और अवस्थाओं के योग से पञ्च सन्धियों की उत्पत्ति होती है---

''मुख प्रतिमुख गर्भ: सावमशेपिसंहृति:।
मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थर संभवा।।''12

समस्त संधियां पञ्च कार्यावस्थाओं तथा पञ्च अर्थप्रकृतियों के योग से बनती है। यथा---

आरम्भ + बीज = मुखसंधि

इसकी चर्चा आगे हो चुकी है इसलिए पुन: उसी की चर्चा करना

पिष्टपेषण मात्र होगा।

2. नेता तथा पात्र

रूपक का दूसरा प्रमुख भेद नेता माना जाता है। रूपक में ''नेता'' शव्द के साथ नायक का सारा चित्र आ जाता है। नायक के कौन-2 से लक्षण या गुण होने चाहिए इसके विषय में धनंजय लिखते हैं--

''नेता विनीतो मधुरत्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरो युवा।।13

बुद्धयुत्साहस्मृति प्रज्ञा कलामानसमान्वितः।
भूरोदृढश्च तेजस्वी शास्त्र चक्षुश्च धार्मिकः।।14

रूपक या काव्य का नायक वही हो सकता है जो विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष आदि गुणों से युक्त हो । उपर्युक्त जितने गुणों की चर्चा की गयी है वे तो साधारण गुण है इन्ही के आधार पर नायक (नेता) के चार भेद किये जा सकते हैं--

1. धीरोद्वात्त 2. धीरललित 3. धीरप्रशान्त 4. धीरोद्धत

धीरोद्धात

इस प्रकार का नायक स्वयं की प्रशंसा न करने वाला, अहंकार न रखने वाला, अत्यन्त गम्भीर तथा किसी राजकुल में उत्पन्न राजा होता है। राम युधिष्ठर आदि इसी कोटि के नायक हैं ।

धीरललित

धीरललित नायक समस्त चिन्ताओं से मुक्त तथा कला एवं संगीत, प्रेमी व स्वभाव से मृदुल होता है। शकुन्तला के दुष्यन्त, रत्नावली के वत्सराज आदि इसी कोटि के नायक हैं ।

धीरप्रशान्त

इस प्रकार का नायक सामान्य गुणों से युक्त कोई ब्राह्मण, मंत्री, या वैश्य ही हो सकता है। मालती माधव के माधव और मृच्छकटिकम् के चारूदत्त इसके उदाहरण हैं ।

धीरोद्धत

इस प्रकार का नायक धीरोद्धात्त नायक के विरूद्ध आचरण करने वाला होता है इसीलिए उद्धत भी कहा जाता है। भीमसेन या परशुराम इसी कोटि के नायक है

नायिका

नायक की भांति ही रूपक में नायिकाओं के विभिन्न प्रकार की चर्चा की गयी है । धनंजय द्वारा लिखित दसरूपक में नायिकाओं के तीन मुख्य भेद बताये गये हैं ।

1- स्वकीया 2- परकीया 3- सामान्य।

3.रस

दृश्यकाव्य के तीन भेदों में से रस को अन्तिम भेद माना जाता है। दृश्य काव्य में रस सामाजिक को रसोद्रेक कराना ही काव्य का मुख्य लक्ष्य होता है। अब समस्या यह उठती है कि रस है क्या ? काव्य पढ़ने सुनने या देखने से पाठक, श्रोता या दर्शक जिस आनन्द का अनुभव करता है उसे ही सामान्य अर्थ में ''रस'' कहा जाता है। आचार्य भरत का मत है---

''विभावानुभावव्याभिचरि संयोगाद् रसनिष्पत्तिः।''15

साहित्य में रस नौ प्रकार के होते हैं तथा उन सभी के एक-एक स्थायी भाव भी होते हैं जो इस प्रकार हैं--

रस	स्थायी भाव
श्रृंगार	रति
हास्य	हास
अद्भुत	आश्चर्य
भयानक	भय
करुण	शोक
वीर	उत्साह
वीभत्स	जुगुप्सा
रौद्र	कोध

नाट्योत्पत्ति

भारतीय वांङ्गमय में नाटक को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। कालिदास का पद निश्चित है और उनका ''अभिज्ञान शाकुन्तलम्'' समस्त काव्य (साहित्य) का सार है। इस बात का उद्घोष प्राचीन पण्डितों ने मुक्तकण्ठ से किया है। ''काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।

मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति होती है कि वह अपने भावों और विचारों का आदान-प्रदान एक दूसरे के माध्यम से एक दूसरे तक पहुँचाएं। इसी प्रकार मनोरंजनार्थ दूसरे का अनुकरण करने की प्रवृत्ति भी मनुष्य में स्वाभाविक है अतएव धनंजय ने दशरूपक में अनुकरण को ही नाटक माना है और दूसरे की अवस्था के आरोप के कारण इसका नाम भी रूपक दिया है--

''अवस्थानुकृतिर्नाट्यं ।''16

''रूपकं तत्समारोपात।''17

नाटक की उत्पत्ति के विषय में सर्वाधिक प्राचीन मत भरतमुनि का है। भरतमुनि द्वारा रचित नाट्य शास्त्र के प्रथम अध्याय में नाट्य उत्पत्ति की चर्चा भरतमुनि ने स्वयं की है यही नहीं इस अध्याय का नाम ही ''नाट्योत्पत्ति' रखा है। नाट्योत्पत्ति के विषय में एक कथा प्रचलित है कि एक बार जब भरतमुनि जप-ध्यान समाप्त करके बैठे हुए थे उसी समय महात्मा तथा जितेन्द्रिय आत्रेय आदि मुनिगण भरतमुनि के समीप जाकर बोले --

''योऽयं भगवतः सम्यग्ग्रंथितो वेद सम्मितः।
नाट्यवेदः कथं ब्रह्मन्नुत्पन्नः कस्य वा कृते।।''18

अर्थात हे भगवन् आपने जिस वेद तुल्य नाट्यवेद का निर्माण किया है वह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और किसके लिए तथा क्यों ? तब भरतमुनि ने नाट्योत्पत्ति (सृष्टि) के विषय में बताया कि नाटक की उत्पत्ति ब्रह्मा ने महेन्द्रादि देव समूह की प्रार्थना पर की है--

''महेन्द्रप्रमुखैर्दिवैरूक्त: किल पितामह:।
क्रीडनीय कमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद् भवत।।''19

देवताओं ने ब्रह्मा के सामने प्रस्ताव रखा कि चारों वेदों (ऋग्वेद्, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद,) के अतिरिक्त एक ऐसा वेद बनाइये जिसमें सभी वर्गो का स्थान हो, क्योंकि जितने भी वेदोक्त व्यवहार है वे निम्न जातियों के लिए उपयुक्त नहीं है विशेषकर शूद्र आदि निम्न जातियों को सम्मिलित होने का अधिकार नहीं है। इस समस्या के निराकरण हेतु ब्रह्मा ने पंचम वेद नाटक का सृजन किया जो समस्त शास्त्रों के मर्म को अभिव्यक्त कर सके और जिसके द्वारा समस्त कलाओं तथा शिल्पों का प्रदर्शन हो सके।

''सर्वशास्त्रार्थ सम्पन्नं सर्वशिल्प प्रवर्तकम्।
नाट्याख्यं पच्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्।।20

ब्रह्मा ने चारों वेदों का स्मरण करके पंचम वेद के रूप में नाट्यवेद का निर्माण किया। जो विशेषकर शूद्र आदि जातियों के जिए उपयुक्त हुआ। इस नाट्यवेद के लिए उन्होंने (ब्रह्मा) ऋग्वेद् से पाठ्य (सम्वाद), सामवेद से गीत-संगीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से श्रृंगारादि रसों का संग्रह किया।

''जग्राह पाठ्यमृग्वेदात सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादिभिनयान रसानाथर्वणादपि।।''21

वेदों और उपवेदों के ज्ञाता भगवान श्री ब्रह्मा जी के द्वारा--

''वेदोपवेदैः संबंधो नाट्यवेदो महात्मना।
एवं भगवता सृष्टो ब्रह्मणा सर्ववेदिना।।''22

जिस पंचम वेद नाट्य वेद (नाट्यो तु पंचमो वेद:) की रचना हुई उसका प्रयोजन था---

''दु:खार्त्तानां श्रमत्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्ति जननं काले नाट्यमेत मयाकृतम्।।23

भरतमुनि द्वारा हुई पंचम वेद की रचना में सभी प्रकार के शिल्प और कर्म व्यापार को एक साथ दिखाया जा सकता है--

''सर्वशास्त्राणि शिल्पानि कर्माणि विविधानि च।
अस्मिन्नाट्ये समेतानि तस्मादेतन्मया कृतम्।।''24

वेद नाट्य साहित्य का मूलाधार

नाट्य शास्त्र के अनुसार नाट्य को एक वेद माना जा सकता है--- पंचम वेद ''नाट्योतपंचमोवेद:।'' वेदों में नाटक के सभी तत्व विद्यमान हैं वैदिक विद्वानों ने वेदों में नाटक के सभी प्रधान अंगों को परिलक्षित किया है जैसे--ऋग्वेद् में संवाद तत्व, सामवेद में संगीत तत्व, यजुर्वेद में अभिनय और अथर्ववेद में रस तत्व। यही नाटक के अंग कालान्तर में विकसित होकर नाटक के अपजीव्य बने और इन्हीं से संस्कृत नाटकों का विकास माना जाता है।

नाट्यवेद

ब्रह्मा जी ने चारों वेदों से (ऋग्वेद्, यजुर्वेद, सामवेद, तथा अथर्ववेद) सार संकलन करके पंचम वेद के रूप में नाट्य वेद का निर्माण किया।

जिस प्रकार संसार में प्राप्त होने वाले नाना कला कौशल का जन्म वेद से हुआ उसी प्रकार रूपक के विभिन्न तत्व भी वेद में पाये जाते हैं। नाट्यवेद के निर्माण के विषय में नाट्य-शास्त्र के आद्य प्रणेता आचार्य भरतमुनि का मत है--

''जग्राह पाठ्यमृग्वेदात सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादिभिनयान रसानाथर्वणादपि।।''25

ऋग्वेदों से सम्वाद, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस संग्रहीत करके पंचम वेद नाट्यवेद का निर्माण हुआ।

ऋग्वेद से पाठ्य (सम्वाद)

ऋग्वेद् के उद्गम और प्रारम्भिक साहित्य के सन्दर्भ हेतु ऋग्वेद्

में विभिन्न स्थलों पर संवाद सूक्तों का विवेचन प्राप्त होता है। नाट्यवेद का प्रथम तत्व पाठ्य (सम्वादादि) ऋग्वेद से ही लिया गया और नाटक में पाठ्य तत्व का महत्वपूर्ण स्थान माना गया है। ऋग्वेद् में कई स्थलों पर संवाद-सूक्तों की चर्चा प्राप्त होती है, कुछ प्रमुख सूक्त इस प्रकार है--

- अगस्त्य, उनकी पत्नी लोपामुद्रा तथा शिष्य संवाद , 1/179
- विश्वामित्र नदी संवाद, 3/33
- पुरूखा उर्वशी संवाद, 10/96
- वशिष्ठ और सुदास संवाद 7/83
- यम-यमी संवाद 10/10
- सरमा पणि संवाद 10/108
- इन्द्र मरूत संवाद 1/165

अनेक ऐसे अन्य स्थल भी पाये जाते हैं जिससे पता चलता है कि वैदिक युग में यज्ञों, गोष्ठियों और विभिन्न धार्मिक आयोजनों के समय परस्पर संवादो का प्रयोग हुआ करता था और नाट्य के लिए ऋग्वेद से इन्हीं संवादो से पाठ्य सामग्री ली गयी।

सामवेद से गीत

नाट्यवेद के लिए गीत या संगीत का संग्रह सामवेद से किया गया। सामवेद को भारतीय संगीत का मूल उद्गम माना जाता है। साम का अर्थ है सुन्दर सुखकर वचन। वेद मंत्र के उद्गाता (वेद उच्चारण करने वाला) साम द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते थे। पितामह ने नाट्यवेद के लिए गीत का आधार सामवेद से ग्रहण किया। सामवेद में पूर्वार्चिक, उत्तरार्चिक, ग्रामगेयगान, आख्यगेयगान, स्तोक और स्तोम आदि संगीत विषयक पारिभाषिक शब्दावली विद्यमान है। वेंदों में

मंत्र तीन प्रकार के हैं-- ऋचा, यजुष, और सामगीति। ऋचाएं दो प्रकार की होती हैं-- गेय तथा अगेय। सामवेद के ऋचा समूह को आर्चिक और यजुष समूह को स्तोक कहा गया। ये आर्चिक और स्तोक ही साम कहे जाते है। सामवेद का संगीत प्रस्त्वा, हुंकार, उद्‌गीथ प्रतिहार, उपद्रव, निधान और प्रणव इन सात भावों में विभक्त हैं।26

यजुर्वेद से अभिनय

यजुर्वेद में यज्ञों का विधान है। यजुष शब्द का अर्थ पूजा एवं यज्ञ है। जिस प्रकार ऋग्वेद् के मन्त्रों का प्रधान विषय सामगान करना है उसी प्रकार यजुर्वेद के मंत्रों का प्रधान विषय यज्ञ विधियों को संपन्न करना है। यजुर्वेद की ऋचाओं के भावात्मक एवं आंगिक संकेतों तथा हाव भाव के आधार पर अभिनय के विभिन्न रूपों का विकास हुआ।

अथर्ववेद से रस

अथर्वा नामक ऋषि के नाम से अथर्ववेद का नामकरण माना जाता है। अथर्ववेद के मंत्रों को दो भागों में विभक्त किया गया- अथर्वन तथा अंगिरस। सभी ऋचाएं, मंत्र-तंत्र तथा औषधि उपचार से जो संबंध रखते हैं, उन्हें अथर्वन भाग के अन्तर्गत तथा समस्त ऋचाएं, मारण, मोहन, उच्चाटन आदि से संबंधित जितने भी भाग हैं उन्हें अंगिरस के अन्तर्गत माना जाता है।

अथर्ववेद के इस अंगिरस भाग के अन्तर्गत ऋचाओं एवं क्रियाओं के सम्पादन की सिद्धि के लिए कुछ प्रतीक निश्चित किये गये हैं। इन प्रतीकों के पृथक्-2 अभिचार हैं जिसका प्रयोग मंत्र सिद्धि के लिए किया जाता है। इन अभिचारों के प्रयोग से जिन भावों तथा उद्‌वेगों का उदय होता है वे ठीक वैसे ही होते हैं, जैसे रस प्रकिया अथवा रस निष्पत्ति के लिए विभावादि का अभिव्यञ्जन होता है। भावोद्‌वेग द्वारा रस निष्पत्ति के इसी आधार पर अथर्ववेद से नाट्यवेद के लिए रस

सामग्री का संग्रह किया गया है।

वैदिकोत्तर काल

रामायण और महाभारत काल में भी ''नाट्यशास्त्र' एवं नाटकों का विकास पाया जाता है। हरिवंश पुराण के पृ. 5 और 16 पर तो रामकथा पर आधारित नाटकों का उल्लेख मिलता है। प्राचीन काल में धार्मिक उत्सवों और यात्रादि के अवसरों पर भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण की लीलाओं का उल्लेख मिलता है। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में अमृतमन्थन त्रिपुरदाह और प्रलम्बवध आदि नाटकों की चर्चा की है। बौद्धों ने भी अपने धर्म-प्रचार के लिए नाटकों को ही माध्यम बनाया।

पाणिनिकाल

पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में शिलालि और कृशाख नामक दो नट प्रणेताओं का वर्णन किया है, इससे ऐसा ज्ञात होता है कि उस युग में नाटक पूर्ण विकसित हो चुके थे, लेकिन वे आज उपलब्ध नहीं हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कंसबध और बालिबध दो नाटकों का उल्लेख किया हैं।

संस्कृत नाटकों का उद्गम और विकास

संस्कृत नाटकों की अतिप्राचीनता के संबंध में ऋग्वेद्, यजुर्वेद, अथर्ववेद, तथा सामवेद में भी चर्चा प्राप्त होती है। वैदिककाल से लेकर पाणिनिकाल तक नाटकों का इतिहास दिखायी देता है। रामायण, महाभारत अष्टाध्यायी इत्यादि में भी नट प्रणेताओं का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। रामायण महाभारत तथा अष्टाध्यायी के उपरान्त कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पंतजलि के महाभाष्य इत्यादि में भी नाट्यकला का प्रचार प्रसार हो चुका था।

संस्कृत साहित्य में नाटकों के निर्माण की प्राचीन परम्परा में आचार्य वामन ने नाटक को प्रथम स्थान दिया है तथा उन्होंने यह भी कहा है कि कथा, आख्यायिका, महाकाव्य आदि का वास्तविक आनंद तभी संभव है जब उसमें नाटकत्व का समावेश हो।

आचार्य अभिनव गुप्त का भी मानना है कि नाटक ही एक ऐसा काव्यांग है जिसके द्वारा रंगमंच के वातावरण, पात्रों के आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक किया व्यापार के द्वारा हृदयहीन सामाजिक भी सहृदय सामाजिक की भाँति अलौकिक आनन्द प्राप्त कर सकता है।27

आचार्य भरतमुनि ने तो नाटक को पंचम वेद की संज्ञा से अभिहित किया है-- ''नाट्यों तु पंचमों वेदा:''। संस्कृत नाटक का कमिक विकास वैदिक साहित्य, इतिहास पुराणों से तथा लौकिक गीतों से प्रारम्भ हुआ और साथ ही साथ धार्मिक एवं सामाजिक उत्सवों से प्रेरणा भी मिली। इस प्रकार संस्कृत नाटकों का पूर्ण विकास कई शताब्दियों से हुआ और उसकी उत्पत्ति तथा अभ्युदय में अनेक तत्वों का उपयोग हुआ।

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति

पाश्चात्य् विद्वानों के मतानुसार

डॉ. रि्जवे (Redgeway) नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण वीर पूजा मानते हैं उनका कहना है कि ''नाटकों का उद्भव मृतात्माओं को प्रसन्न करने तथा उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हुआ था।''28

प्रो0 हिलब्रैण्ड (Hillbrand & Stenkonow) और प्रो0 स्टेनकोनो ''नाटकों का जन्म लोकप्रिय स्वांग से हुआ'' मानते हैं।29

डॉ. पिशेल (Pischel) ''पुत्तलिका नृत्य से नाटक की उत्पत्ति मानते हैं।30

प्रो0 ल्यूडर्स (Luders) नाटकों का जन्म ''छाया नाटकों अर्थात छाया द्वारा दिखाए जाने वाले नाटकों से मानते हैं।''31

प्रो0 मैक्सम्यूलर तथा प्रो0 सिलवन लेबी (Max-Mullar & Sylvain Levi) एवं डॉ. हर्टल (Hertel) ''भारतीय नाटकों की उत्पत्ति ऋग्वेद् के संवाद सूक्तों से हुई मानते हैं।''32

डॉ. कीथ (Kieth) की मान्यता है कि -''प्राकृतिक परिवर्तनों को सर्वसाधारण के सामने मूर्तरूप दिखलाने की अभिलाषा ने नाटकों को जन्म दिया।''33

प्रो0 वेबर (Weber) और प्रो0 विंडिश (Windisch) ''भारतीय नाटकों के उद्गम में यूनानी नाट्यकला के प्रभाव को सिद्ध करने का प्रयत्न बताया है।''34

भारतीय मत

धनंजय के अनुसार--

अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतोच्यते।
रूपकं तत्समारोपातद् दशधैव रसाश्रयम।।35

भरतमुनि के अनुसार--

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।।36

वेदों में ही नाटक के बीज उपलब्ध होते हैं। नाटक के सभी तत्वों को वेद में देखा जा सकाता है। जैसे ऋग्वेद् के संवाद सूक्तों में यम-यमी, संरमा-पणि आदि के संवाद, सामवेद में संगीत तत्व की सत्ता, यजुर्वेद में धार्मिक कृत्यों के अवसर पर नृत्य विधान आदि से नाटक की वेद मूलकता, स्पष्टतया सिद्ध होती है।

एवं संकल्प्य भगवान सर्ववेदाननुस्मरन् ।
नाट्यवेदं तत्श्चक्रे चतुर्वेदांगसंभवम् ।।37

वाल्मीकि रामायण के निम्नलिखित श्लोकों में नाटक- नर्तक और शैलूष आदि का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है--

''नाराजके जनपदे प्रकृष्ट नटनर्तका:।38

वादयन्ति तथा शान्ति लासयन्त्यपि चापरे।
नाटकान्यपरे प्राहुर्हास्यानि विविधानि च।।39

रामायण में श्री राम के जन्मोत्सव के समय राजमार्ग पर नट-नर्तकों की भीड़ लगी होती थी--

रथ्याश्च जनसम्वांधा नतनर्तकसंकुला:।40

श्रीराम के राज्याभिषेक में सम्मिलित होने वाले सम्भ्रान्त लोगों में नट-नर्तक का भी नाम आया है-- (अयोध्याकांड, 3,4, तथा 15) राम के अश्वमेघ यज्ञ में भी नट-नर्तक उपस्थित होने का वर्णन मिलता है।

वेद, रामायण की भाँति ही महाभारत में भी कुछ स्थलों पर सूत्रधार, नट, नर्तक आदि का उल्लेख प्राप्त होता है---

''इत्यब्रवीत् सूत्रधार: सूत: पौराणिकस्त्था।41

नाटका: विविधा: काव्या: कथाख्यायिककारका:।।42

आनर्तश्च तथा सर्वे नट-नर्तक गायका:।43

महर्षि पाणिनि ने भी अपने व्याकरण सूत्रों में दो नट सूत्रों की चर्चा की है---

''पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयो:।''44
''कर्मन्दकृशाश्वादिनि:।।''45

पंतजलि ने अपने महाभाष्य में **कंसवध** और **बालिबन्ध** नाटकों के खेले जाने का उल्लेख किया है--

> ''ये तावदेते शोभनिका नामैते प्रत्यक्षं कंस घातयन्ति,
> प्रत्यक्षं च बलिं बन्धयन्तीति।।''46

नाटक : परिभाषा एवं स्वरूप

नाटक की परिभाषा :--

नाटक की कोई एक परिभाषा देना बहुत कठिन है। फिर भी भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। उन विद्वानों में किसी ने नाटक को जीवन की प्रतिलिपि कहा है तो किसी ने प्रकृति को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण कहा है कोई इसे जीवन के प्रतिनिधित्व का साधन मानता है तो कोई इसे जीवन की अभिव्यंजनकला मानता है। वास्तव में पाश्चात्य विद्वानों ने कुल मिलाकर अनुकरण की यर्थाथता पर जोर दिया है। पाश्चात्य विद्वान अरस्तू त्रासद (ट्रेजेडी) की परिभाषा देते हुए लिखते हैं कि- "त्रासद उस व्यापार विशेष का अनुकरण है जिसमें गंभीरता हो, पूर्णता हो तथा जिसमें एक विशेष परिणाम हो, भाषा अलंकृत, सजीव तथा विभाषाओं से युक्त हो और शैली वर्णन प्रधान न होकर नाटकीय हो, जो करूणा तथा भय प्रदर्शन द्वारा मनोविकारों का उचित परिष्कार कर सके।"४७

यहाँ अरस्तू ने अन्य बाहरी आवश्यकताओं के अलावा अनुकृति और मनोविकार के परिष्करण या विरेचन पर जोर दिया है। इसी तरह अन्य पाश्चात्य विद्वानों- सिसरो, सों, ल्यूगो और निकाल आदि ने भी इसी तरह के विचार कमोवेश रूप में प्रस्तुत किये हैं।

भारतीय साहित्य मर्मज्ञों ने भी नाटक या रूपक के केन्द्र में अनुकरण को ही प्रधानता दी है। इन विद्वानों ने अपनी व्यापक दृष्टि तथा विवेचन शक्ति के द्वारा इसे पूर्णता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया है। आचार्य भरतमुनि ने सम्पूर्ण त्रैलोक्य के भावानुकीर्तन को नाटक माना है। इसीलिए उन्होंने लिखा है कि---

"नैकान्ततोऽत्र भवतां देवानां चानुभावनम्।
त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनं।"४८

उन्होंने यहाँ पर अनुकृति के साथ ही साथ भाव अर्थात् रस को प्रमुख स्थान दिया है। इसी का विस्तृत अर्थ प्रदान करते हुए उन्होंने लिखा है कि---

''नानाभावोपसम्न्नं नानावस्थान्तरात्मकम्।
लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ॥ ''४९

उपरोक्त उद्धरण में भरतमुनि ने रस, अवस्था तथा अनुकरण पर बल देते हुए नाटक को प्रतिपादित किया है अर्थात् इन प्रमुख तीन तत्वों के बिना नाटक का सम्पूर्ण होना संभव नहीं है इसीलिए अपने नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने नाटक पर पूर्णरूपेण गंभीरता से विचार किया और उसके सूक्ष्म तत्वों को निरूपित करते हुए नाटक की परिभाषा को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया है। वे लिखते हैं कि--

''यस्मात स्वभावं संस्कृत्य सांगोपांगगतिक्रमैः।
अभिनीयते गम्यते च तस्मावै नाटकंस्मृतम् ॥''५०

यो यः स्वभावो लोकस्य नानावस्थान्तरात्मकः।
सांगाभिनयोपेतः नाट्यमित्यभिधीयते ॥ ''५१

उपरोक्त उद्धरणों में भरतमुनि ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि नाटक में अवस्था का अनुकरण, भावों का अनुकरण तथा वृत्तों का पूर्णरूपेण अनुकरण होना चाहिए। भरतमुनि यहाँ पर अवस्था, भाव और तत्व से उनका तात्पर्य नेता, रस और वस्तु तत्व से ही है। इसीलिए उन्होंने --''वस्तु नेता रसस्तेषां भेदकः'' कहकर इन तीनों को नाटक का भेद माना है। ठीक इसी तरह दशरूपककार धनंजय ने भी नाटक की परिभाषा दी है उनके अनुसार ---

''अवस्थानुकृतिर्नानाट्यम् रूपं दृश्यतोच्यते।
रूपकं तत्समारोपाद् दशधैव रसाश्रयम् ॥ ''५२

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में नाट्य स्वरूप के अन्तर्गत नाटक को परिभाषित किया है-

''नैकान्ततोऽत्र भवतां देवानां चानुभावनम् ।

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम् ।।''५३

अर्थात् (अतएव) इस नाट्यवेद में केवल आपके या देवताओं के ही चरित्रों का अनुभावन (कल्पना द्वारा अनुकरण या अभिनय ही) नहीं है (किन्तु) इस नाट्य में तो त्रैलोक्य के (समस्त) भावों का प्रस्तुतीकरण (अनुकीर्तन अर्थात् अनुकीर्तन का अर्थ है शब्द द्वारा कथन क्योंकि बिना शब्दों के साधारणीकरण का व्यापार संभव नहीं। अतएव अनुभावन नहीं किन्तु अनुकीर्तन ही 'नाट्य' है।) होता है।

दशरूपककार ने भी अवस्था का अनुकरण, रूप का अनुकरण एवं रस अर्थात भावों के अनुकरण को प्रमुख स्थान दिया है। उन्होंने दशरूपकों को मुख्य रूप से रस के आश्रित होना आवश्यक माना है।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न विद्वानों ने नाटक की परिभाषाएं अपने-अपने मतानुसार प्रस्तुत की हैं। सभी विद्वानों ने नाटक को प्रमुखता प्रदान की है और अन्य तत्वों का संकेत किया है। अतएव भारतीय विद्वानों के मतानुसार नाटक एक ऐसा अनुकरण है जो प्रेक्षकों को रसास्वाद करा सके। इस प्रकार संक्षेप में यदि नाटक को परिभाषित किया जाय तो इतना कहा जा सकता है कि नाटक यथार्थ की अनुकृति पर आधारित एक रस प्रधान अभिनेय काव्य है।

नाटक का स्वरूप :---

नाटक के उद्भव और विकास के अन्तर्गत प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमने नाटक के स्वरूप की चर्चा की है। किन्तु यहाँ पर विभिन्न विद्वानों के संदर्भों के साथ नाटक के स्वरूप का स्पष्टीकर देने का प्रयास किया गया है। नाटक के लिए साहित्य में नाटक , नाट्य, रूप, रूपक आदि शब्दों का प्रयोग होता है। ये सभी शब्द समानार्थक एवं पर्याय हैं। उपरोक्त शब्दों में से आजकल मुख्य रूप से नाट्य, नाटक एवं रूपक शब्दों का ही अधिक प्रचलन है। नाटक शब्द को लेकर संभवतः उतना विवाद या मतभेद नहीं है

जितना कि नाट्य शब्द को लेकर है। इस संदर्भ में डॉ. श्याम शर्मा ने कुछ विद्वानों के विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि --"यद्यपि विद्वानों ने नाट्य शब्द की व्युत्पत्ति नट्, नाट् आदि से मानी है। पर आजकल प्रायः नट् से ही नाट्य का विकास माना जाता है। किन्तु विद्वानों में नट् शब्द के संबंध में भी मतभेद है। मोनियर विलियम्स तथा वेबर (संस्कृत-इंगलिस डिक्सनरी, पृ. ५२५, ऐ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ. १९७) ने नट् को नृत्त का प्राकृत रूप माना है, जबकि प्रो. मनकड (टाइप्स ऑफ द संस्कृत ड्रामा, पृ. ६) तथा डॉ. गुप्त (दि इंडियन थियेटर, पृ. १३६) नट को नृत्त की अपेक्षा बाद का मानते हैं। किन्तु डॉ. त्रिगुणायत (शा. स. सि. पृ.१७९ तथा मा.ना. सा. में उनका लेख और दशरूपक की भूमिका) नट् तथा नृत्त दोनों को ऋग्वेद में प्रयुक्त मानकर समान रूप से प्राचीन, अतः नट् से ही नाट्य का मूलतः विकास मानते हैं। किन्तु हम उनसे सहमत नहीं हैं। सर्वप्रथम ऋग्वेद में 'नट' का अस्तित्व खोजने से ही नट् से नाट्य या नाटक का विकास नहीं माना जा सकता। दूसरे, ऋग्वेद में वस्तुतः 'नट्' नहीं अपितु अभिनट् शब्द है। सायण ने इस अभिनट् को व्याप्त्यर्थक 'नश्' से व्युत्पन्न मानकर इसका अर्थ 'अभिव्याप्नोतु' लिखा है। (मा अभिनटः मा अभिव्याप्नोतु नश्यते र्व्याप्ति कर्मणोर्लुडिः, ऋग्वेद सायणभाष्य ७ / १०५ / २३) संभवतः डॉ. त्रिगुणायत को प्राकृत शब्द से भ्रम हो गया है। वस्तुतः नृत का प्राकृत रूप है, किन्तु नट् नृत से प्राचीन नहीं है। प्राकृत से संस्कृत रूप ही प्राचीन होता है। ऋग्वेद (१०/१८/१३) में नत्त का प्रयोग है, उसका अर्थ सायण ने हिलना-डुलना किया है। अतः हमारा विश्वास है कि नृत्त के मूल अर्थ में ही नट् का अर्थविस्तार तथा अर्थपरिवर्तन किया है। उनके सिद्धान्त कौमुदी के उद्धरण से स्पष्ट है कि मृत्त अर्थ में नट् का प्रयोग हुआ। अर्थात् नृत्त नट की अपेक्षा अपने अर्थ में अधिक वद्धमूल है। नट व्यपदेश से भी यही ध्वनित होता है। वस्तुतः अभिनय का तात्पर्य नटन् से है। अर्थात् नृत से नट का और नट् से नाट्य का विकास हुआ है।"५४

महर्षि पाणिनि ने नाट्य या नाटक शब्द की उत्पत्ति नट धातु से मानी है जो सर्वमान्य है। रूपक शब्द की व्युत्पत्ति "रूप" धातु में ण्वुल प्रत्यय

लगाकर हुई है।५५ जिससे स्पष्ट हो जाता है कि रूप का आरोपण नाटक है। वैसे भी रूपक शब्द के अर्थ हैं , लेकिन साहित्य के अन्तर्गत उन अर्थों में से नाट्य या नाटक के अर्थ को ही ग्रहण किया जाता है। नाट्य शब्द के प्रस्फुटन को लेकर डॉ. जलज कुमार जलज अपनी संभावना व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि "नाट्य का सबसे पहला स्फुरण संभवतः तब हुआ होगा जब मनुष्य ने अपने आंतरिक आह्लाद को विविध सात्विक, वाचिक और आंगिक चेष्टाओं के द्वारा सहज ही अभिव्यक्त किया होगा। यद्यपि अवस्था की अनुकृति न होने के कारण यह नाट्य के स्थान पर नृत्य संबंधी प्रथम स्फुरण ही अधिक है। फिर भी जैसा भी सीमित और स्पष्ट नाट्य स्फुरण यह है इसके मूल में आनन्द को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न दिखाई देता है।"५६

इस प्रकार नाट्य शब्द के केन्द्र में मुख्य रूप से आनन्द प्राप्ति का आशय प्रमुख रहा है। धनंजय ने अपने दशरूपक में अवस्था की अनुकृति को ही नाटक कहा है। ("अवस्थानुकृतिर्नाट्यम") चूँकि यह वह दृश्य होता है जिसे देखा जा सकता है। इसलिए इसे रूपक भी कहा गया है और यही नाट्य रूप आरोपित होने से रूपक भी कहलाया। जिससे यह स्पष्ट होता है कि नाटक और रूपक में अवस्थाओं का अनुकरण और रूप का आरोपण मुख्य रूप से किया जाता है। वैसे यह कार्य प्रारंभ में नट जातियाँ किया करती थी , इसलिए इसे नाट्य संज्ञा से भी अभिहित किया गया है।

नाटक के सत्य को एक दूसरे नजरिये से देखते हुए डॉ. श्याम शर्मा लिखते हैं कि "नाटक के वास्तविक स्वरूप के अधिग्रहणार्थ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परिवेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि मनुष्य, क्योंकि निःसर्गतः एक अभिव्ंजनशील प्राणी है। अतः स्वानुभूतियों को स्वैच्छिक माध्यम से अभिव्यक्त करना मानव स्वभाव है। स्वानुभूति को दूसरे की अनुभूति बनाने के लिए ही वह अभिव्यक्ति का आश्रय लेता है। वस्तुतः यह अभिव्यक्ति ही नाटक या नाट्यकला का आधार है।"५७ डॉ. शर्मा द्वारा व्यक्त किया गया यह नाट्य स्वरूप निश्चित रूप से ग्राह्य है। नवीन परिभाषा देते हुए यह "रूपारोपात्तरूपकम्" पर आधारित है।

नाटक के उद्भव के अन्तर्ग यह बताया जाता है कि नाटक की उत्पत्ति उस दिन हुई जब आखेट से आने के पश्चात् आखेटक ने अपने बच्चों और साथियों के मनोविनोद के लिए विविध चेष्टाओं तथा मुद्राओं को प्रकट किया होगा। तभी से इस अभिनयात्मक खेल का निर्माण खेल का निर्माण हुआ होगा। तभी से नाटक में अनुकरण की भूमिका महत्त्वपूर्ण हुई होगी। इस प्रकार इस खेल में जिसमें कि अनुकरण एवं अभिनय का समावेश हुआ है, का निर्माण हुआ।

इस प्रकार से अनुकृति, अभिनय, अनुकरण तथा रूप का आरोपण आदि को नाटक की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। यही नाटक का आधार मात्र है।

संस्कृत नाटक की विकास परम्परा

संस्कृत नाट्य साहित्य की परम्परा ऋग्वेद् से ही मिलती है। पतंजलि के समय में नाटक अपनी उन्नति के शिखर पर था। संस्कृत नाटककारों में सबसे प्राचीन रचनाएं महाकवि भास की प्राप्त होती हैं तथा संस्कृत नाट्य साहित्य की परम्परा भी भास से ही आरम्भ होती दिखायी देती है। कालिदास के नाटकों में नाट्यकला की जो चरमसीमा दिखलाई पड़ती है उससे यह सिद्ध होता है कि उनसे पूर्व भी संस्कृत नाट्य साहित्य की प्राचीन और पुष्ट परम्परा विद्यमान थी। स्वयं कालिदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक "मालविकाग्नि मित्रम्" की प्रस्तावना में भास के यशस्वी एवं प्रतिष्ठित व्यक्तितत्व के संबंध में लिखा है-- "प्रथितयशसां भास सौमिल्लककवि पुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवे: कालिदासस्य कृतौ बहुमान:।।"58 इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास के समय में भास के नाटक अत्यन्त लोकप्रिय हो चुके थे। महाकवि बाणभट्ट ने भास की लोकप्रियता की चर्चा हर्षचरित में की है--

"सूत्रधार कृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकै:।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।।"59

भास

नाटक की विकास परम्परा जो कि हमें वैदिक काल से ही देखने को मिलती है उसका पूर्ण विकास महाकवि भास के नाटकों में

देखने को मिलता है। महाकवि भास ने कुल 13 नाटकों की रचना की है जो इस प्रकार है---

पञ्चरात्रम्

प्रस्तुत नाटक में कुल 3 अंक है। नाटक का आधार महाभारत का विराट पर्व है। द्यूत कीड़ा में पराजित पाण्डव 13 वर्ष के बनवास के बाद राजा विराट के यहाँ छद्मवेष में अज्ञातवास कर रहे होते हैं उसी समय कुरूराज दुर्योधन एक बहुत बड़ी यज्ञ करता है तथा उसमें समस्त राजाओं को शामिल होने के लिए आमंत्रित करता है। यज्ञ समाप्त होने पर पता चलता है कि राजा विराट यज्ञ में शामिल नहीं हुआ है। गुरू द्रोण दुर्योधन से दक्षिणा में पाण्डवों के लिए 5 गाँव मांगते हैं दुर्योधन यह शर्त रखता है कि यदि पाण्डव 5 दिन के अन्दर मिल जायेंगे तो वह पाण्डवों को 5 गाँव दे देगा। द्रोण, भीष्म, कृपाचार्य आदि राजा विराट के यहाँ आक्रमण करते हैं। पाण्डव कौरवों को परास्त करते हैं। पाण्डवों का पता चलने गुरू द्रोण दुर्योधन को पच्चरात्र की प्रतिज्ञा का ध्यान दिलाते हैं, दुर्योधन पाण्डवों को आधा राज्य देना स्वीकार करता है यहीं पर नाटक समाप्त होता है। नाटककार ने नाटक में कुछ काल्पनिक पात्र एवं घटनाओं का भी समावेश किया है।

दूतवाक्यम्

प्रस्तुत नाटक 'दूतवाक्यम्' एक महाभारतीय आख्यान है। सम्पूर्ण नाटक द्यूतवेशधारी श्रीकृष्ण के वचनों से अनुप्रणित है। संभवतः इसीलिए

इस नाटक का नाम भी "दूतवाक्यम्" रखा गया। नाटक का मुख्य रस वीर है।

कर्णभारम्

नाटक का आधार महाभारत की कथा है। भट्ट के द्वारा कर्ण को पता चलता है कि पाण्डव की सेनाएं अर्जुन को आगे करके युद्ध के लिए बढ़ रही है, यहीं से नाटक का प्रारम्भ होता है। कर्ण भी अर्जुन के रथ के सामने अपने रथ को ले चलने के लिए शल्य से कहता है तथा शल्य से परशुराम द्वारा दिये गये शाप (श्राप) के बारे में बताता है। ब्राह्मण वेशधारी इन्द्र कर्ण से कवच-कुण्डल माँग लेते हैं। यहीं पर परशुराम का शाप फलीभूत होता है, फिर भी प्रलयकारी शंखध्वनि को सुनकर कर्ण अर्जुन के रथ की ओर प्रस्थान करते हैं। यहीं पर भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

दूत घटोत्कच

प्रस्तुत नाटक का नामकरण हिडिम्बा पुत्र घटोत्कच के दौत्यकर्म से संबंध रखता है। अभिमन्यु की पराजय के बाद घटोत्कच पाण्डवों के समक्ष प्रस्तुत होकर अर्जुन के द्वारा उनके दमन की घोषणा करता है तथा अन्त में भगवान श्रीकृष्ण के सन्देश को सुनाता है। यहीं पर नाटक समाप्त हो जाता है।

मध्यम-व्यायोग

नाटक का आरम्भ नान्दी पाठ से होता है। भीमपुत्र घटोत्कच जंगल के रास्ते से जा रहे ब्राह्मण परिवार को रोकता है। तीन में से

एक को माँ के पारण के लिए अपने साथ चलने को कहता है। मध्यमपुत्र जलाशय में जलपान करके वापस आने को कहता है, देर होने पर घटोत्कच मध्यम कहकर बुलाता है, मध्यम शब्द सुनकर भीम वहाँ आ जाते हैं और ब्राह्मण की जगह घटोत्कच के साथ स्वयं जाने के लिए तैयार हो जाते हैं। भीम घटोत्कच के साथ जब हिडिम्बा के पास पहुँचता है, तो हिडिम्बा भीम को देखकर उन्हें 'आर्यपुत्र' कहकर अभिवादन करती है। घटोत्कच अपने कृत्य पर लज्जित होता है। यहीं पर नाटक समाप्त हो जाता है।

उरुभंगम्

प्रस्तुत नाटक महाभारत युद्ध के अन्तिम अंश से संबंध रखता है। नाटक का प्रारम्भ भीम और दुर्योधन के गदायुद्ध से होता है। भीम दुर्योधन को अपनी गदा से मारकर मूर्छित कर देता है, उसी समय शोकावस्था में दुर्योधन के पास गांधारी, धृतराष्ट्र इत्यादि उपस्थित होते हैं। यहीं पर भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

अभिषेक नाटकम्

प्रस्तुत नाटक का आधार रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से प्रारम्भ होकर लंकाकाण्ड के उत्तरार्ध तक की कथा है। इस नाटक में कुल 7 अंक हैं। राम-रावण के युद्ध के पश्चात् रावण राम द्वारा मारा जाता है और राम के राज्याभिषेक के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

प्रतिमानाटकम्

यह नाटक भास के समस्त नाटकों में सर्वोत्तम है नाटक

काआधार रामायण है। नाटक में कुल 7 अंक हैं। सम्पूर्ण नाटक में राम के वनगमन से लेकर राम के पुनः अयोध्या आने तक की चर्चा की गयी है। नाटक भरतवाक्य के साथ समाप्त हो जाता है।

बालचरितम्

यह नाटक श्रीकृष्ण की बाललीलाओं पर आधारित है। इसमें कुल 5 अंक हैं। श्रीकृष्ण जन्मोत्सव के कंस का वध करते हैं तथा वसुदेव के निर्देश से राज उग्रसेन को कारागार से मुक्त किया जाता है और उनका राज्याभिषेक होता है। यहीं पर भरतवाक्य के साथ नाटक समाप्त हो जाता है। सम्पूर्ण नाटक श्रीकृष्ण की लीलाओं पर आधारित है।

अविमारकम्

लोककथा पर आधारित नाटक "अविमारकम्" में कुल 6 अंक हैं। इस नाटक का नायक विष्णुसेन या अविमारक है और नायिका राजा कुन्तिभोज की कन्या कुरंगी है। सम्पूर्ण नाटक अविमारक और कुरंगी के प्रणय व्यापार से ओत-प्रोत है। यह नाटक भरतवाक्य के साथ समाप्त होता है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण

लोककथाओं पर आधारित नाटक प्रतिज्ञायौगन्धरायण का नामकरण अमात्य यौगन्धरायण की प्रतिज्ञाओं पर आश्रित है, जिसमें वत्सराज उद्यन और अवन्तिकुमारी वासवदत्ता के विवाह की रहस्यमय

कथा वर्णित है।

स्वप्नवासवदत्तम्

प्रस्तुत नाटक में कुल 7 अंक है। इस नाटक को प्रतिज्ञायौगन्धरायण का उत्तरार्ध कहा जा सकता है। नाटककार ने सम्पूर्ण नाटक में उद्यन और वासवदत्ता के प्रणय व्यापार तथा अन्त में पद्मावती का विवाह उद्यन के साथ दिखाना चाहा है। इस नाटक में भास की नाट्यकला पूर्णता पर पहुँच चुकी है।

चारूदत्तम्

लोककथा पर आधारित इस नाटक की छाया शूद्रक के "मृच्छकटिकम्" पर स्पष्टतः दिखायी देती है। नाटक का नायक चारूदत्त वणिक है। नाटक में कुल 4 अंक है। महाकवि भास की नाट्यश्रंखला में चारूदत्तम् अन्तिम कड़ी माना जाता है। इस प्रकरण में उज्जयिनी के सार्थवाह ब्राह्मण चारूदत्त और गणिका वसन्त सेना के विशुद्ध प्रेम की चर्चा की गयी है। वसन्त सेना का दूसरा प्रेमी राजा का साला शकार है जिसे वसन्त सेना नहीं चाहती है। निर्धन ब्राह्मण चारूदत्त के साथ वसन्त सेना का यह उदात्त प्रणय दिखाना ही नाटककार का उद्देश्य है।

कालिदास

भास के पश्चात् संस्कृत महाकाव्यकारों एवं नाटककारों में कालिदास का स्थान है। महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के

सर्वोत्कृष्ट नाटककार माने जाते है। कालिदास द्वारा रचित तीन नाटक उपलब्ध हैं-मालविकाग्नि मित्रम्, विक्रमोवशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलमं्। कालिदास ऐसे प्रथम नाटककार है जिनके नाटकों में नाट्यशास्त्र की दृष्टि से सम्पूर्ण नाटकीय तत्वों का उचित निर्वाह हुआ है। आंग्ल साहित्य में जो स्थान शेक्सपियर का है वही स्थान संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास को प्राप्त है। जिस प्रकार कालिदास के नाटकों में महारानी एलिजाबेथ के समय का साहित्य समृद्ध एवं भरपूर है ठीक उसी प्रकार कालिदास के नाटकों में भी तत्कालीन भारत के जनजीवन की अनुभूतियाँ साकार हुई है। इनके द्वारा रचित नाटक इस प्रकार हैं---

मालविकाग्निमित्रम्

प्रस्तुत नाटक में कुल 5 अंक हैं। यह नाटक श्रृंगार रस ओत-प्रोत है। साथ ही साथ इस नाटक में नायक अग्निमित्र और नायिका मालविका का चित्रण नाटककार ने बड़े ही अच्छे ढंग से किया है। नाटक का नायक अग्निमित्र एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। सम्पूर्ण नाटक में नाटककार ने अग्निमित्र की प्रेमासिद्धि के लिए ही प्रयत्न किया है तथा यही नाटक का उद्देश्य भी है।

विक्रमोर्वशीयम

इस नाटक में नाटककार ने राजा पुरूरवा और अप्सरा उर्वशी की प्रेम कहानी का वर्णन किया है। यह 5 अंको का एक उपरूपक है। नाटक का आधार ऋग्वेद् के दशम मंण्डल का सूक्त संख्या 15 है किन्तु इसका कथानक वैदिक सूत्र की अपेक्षा मत्स्य पुराण में वर्णित कथा से सामंजस्य रखता है। पुरूरवा उर्वशी का प्रेमोद्भव, पुरूरवा की आसक्ति, मध्यान्तर में वियोग और अन्तत: मिलन के साथ नाटक समाप्त हो जाता है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम्

शाकुन्तलम् नाटक महाकवि कालिदास की नाट्यकला का सर्वोत्कृष्ट रूप है। प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त और महर्षि कण्व की पालित धर्मकन्या की प्रणयगाथा निबद्ध है। सम्पूर्ण नाटक में नाटककार ने राजा दुष्यन्त का मिलन व वियोग दिखाया है अन्त में पुन: दोनों के पुन: मिलन के पश्चात् नाटक समाप्त हो जाता है।

अश्वघोष

कालिदास के पश्चात् अश्वघोष का नाम आता है, इनके द्वारा मृच्छकटिकम् की शैली पर आधारित केवल एक 'शारिपुत्रप्रकरण' नामक रचना प्राप्त होती है जो इस प्रकार है--

शारिपुत्रप्रकरण

यह एक रूपक है तथा यह रूपक नाट्यशास्त्र में प्रतिष्ठित रूपक के बिल्कुल अनुरूप है। इस रूपक में कुल 9 (नौ) अंक है जो सर्वथा शास्त्र के नियमानुसार हैं इस रूपक की केवल हस्तलिपि ही प्राप्त होती है।

शारिपुत्र प्रकरण के अंशो वाले प्रकरण में साध्यवसान और गणिका विषयक रूपक के खंडित अंश प्राप्त होते हैं। लेकिन इस रूपक के रचना के विषय में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता है केवल हस्तलेख है वह भी खण्डित।

शूद्रक

शूद्रक द्वारा रचित "मृच्छकटिकम्" संस्कृत नाट्य साहित्य की एक अनुपम कृति है। शूद्रक द्वारा रचित कोई अन्य कृति का पता नहीं चलता है। संस्कृत नाटकों में मृच्छकटिकम् अपनी सामाजिकता के लिए प्रसिद्ध है।

मृच्छकटिकम्

प्रस्तुत नाटक में कुल दस अंक हैं। इस नाटक में नाटककार ने तत्कालीन भारतीय समाज का सर्वांगीण चित्रण प्रस्तुत करना चाहा है। समाज के विभिन्न वर्गो के लोग जैसे चोर-जुआरी, धूर्त, वैश्या, राजा, राजकर्मचारी, ब्राह्मण चाण्डाल आदि का चित्रण शूद्रक ने बड़े अच्छे ढंग से किया है। इस नाटक में सामाजिक जीवन की रोचकता,घटनाओं का घात-प्रतिघात तथा कथानक का कमिक विकास

पूर्ण रूपेण पाया जाता है। इस नाटक में कुल 10 अंक हैं।

विशाखदत्त

संस्कृत नाट्य साहित्य के इतिहास में भास, शूद्रक कालिदास तथा विशाखदत्त ये चार अनुपम विभूतियाँ मानी जाती हैं। विशाखदत्त द्वारा रचित दो नाट्य कृतियाँ प्राप्त होती हैं जो इस प्रकार है---

मुद्राराक्षस

प्रस्तुत नाटक मुद्राराक्षस में भास रचित ''प्रतिज्ञायौगन्धरायणं'' का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। नाटक का कथानक ऐतिहासिक है। संस्कृत साहित्य में मुद्राराक्षस अपने ढंग का एक अनूठा नाटक है। यही कारण है कि इसकी रचना नाट्यशास्त्र के सर्वथा प्रतिकूल है। मुद्राराक्षस तत्कालीन राजनैतिक परिवेश का चित्रण करने वाली एक सफल कृति है। 7 अंकों में रचित इस नाटक में चाणक्य तथा अमात्य राक्षस के बौद्धिक एवं कूटनीतिक संघर्ष का प्रपंच किया गया है।

देवीचन्द्रगुप्तम्

देवीचन्द्रगुप्तम् नाट्य रचना अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है किन्तु नाट्य दर्पण और 'श्रृंगार प्रकाश' ग्रन्थों में इसके उद्धरण प्राप्त होते हैं। यह एक ऐतिहासिक नाटक है।

भवभूति

संस्कृत नाटककारों में भवभूति का स्थान बहुत ऊँचा है। भवभूति के नाटकों में करूण रस की प्रधानता प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है कि -करूणरसेव। इन्होंने कुल तीन नाटकों की रचना की है। जो इस प्रकार है--

महावीर चरितम्

नाटक का आधार वाल्मीकि रामायण है। नाटककार ने नाटक के आरम्भ में ही रामायण की मुख्यकथा का निरूपण किया है। सम्पूर्ण नाटक में नाटककार ने राम-लक्ष्मण आदि भाइयों का विवाह, राम को चौदह वर्ष का वनवास, रामवन गमन, जटायू, और संपातीसंवाद, सीताहरण तथा राम और रावण युद्ध को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। सम्पूर्ण नाटक मर्यादापुरूषोत्तम राम के चरित्र को प्रकट करने वाली एक सफल कृति है।

उत्तररामचरितम्

नाटक का आधार रामायण के राम का राज्याभिषेक हैं अन्तिमकाण्ड, उत्तरकाण्ड है। सम्पूर्ण नाटक में नाटककार ने सीता का वन निष्कासन, लवकुश जन्म इत्यादि प्रसंगों को व्यक्त करना चाहा है।

मालती-माधवम्

नाटक का आधार मालती और माधव का विवाह प्रसंग है। विभिन्न प्रकार की प्रतिकूल-परिस्थितियों के बाद भी अन्त में मालती और माधव का विवाह हो जाता है। सम्पूर्ण नाटक में नाटककार ने इसी प्रसंग को मुख्य प्रसंग बनाया है। यही दिखाना नाटककार का उद्देश्य भी है। भट्टनारायण

वेणी संहार

इस नाटक का प्रमुख आधार महाभारत है। कौरवों की सभा में दु:शासन ने द्रौपदी का चीर हरण करते हुए उसका घोर निरादर किया। भीम ने प्रण किया कि मैं दुर्योधन की जंघा को अपनी गदा द्वारा अवश्य तोड़ूँगा। द्रौपदी भी अपमान के प्रतिकार स्वरूप यह प्रतिज्ञा करती है कि वह भीम की इस प्रतिज्ञा की पूर्ति होने तक अपने केशों को उन्मुक्त ही रखेगीं । अंत में यह प्रतिशोध पूर्ण होता है।

मुरारि

अनर्घराघव (८00 ई0)

मुरारि द्वारा रचित अनर्घराघव रामायण पर आधारित सात अंकों का नाटक है। यह वीर और अद्भुत रस से युक्त है। इस नाटक में महर्षि विश्वामित्र द्वारा यज्ञ की रक्षा हेतु महाराजा दशरथ से राम-लक्ष्मण की याचना से लेकर, राम के राज्याभिषेक पर्यन्त की कथा रोचक एवं कवित्वपूर्ण शैली में प्रस्तुत की गयी है।

शक्ति भद्र

आश्चर्य चूणामणि (788 -820 ई0)

शक्तिभद्र द्वारा रचित "आश्चर्य-चूणामणि" रामायण के आधार पर रचित 7 अंकों का नाटक है। इसमें शूर्पणखा प्रसंग से सीता की अग्नि परीक्षा पर्यन्त कथा का समावेश है। साथ ही साथ राम के चरित्र एवं अन्य आश्चर्योपादक घटनाओं का सगुंफन नाटककार ने किया है।

दामोदर मिश्र

हनुमन्नाटक (850 ई0)

रामायण पर आधारित वृहद् काव्यात्मक नाटकों में यह नाटक अग्रगण्य माना जाता है। अन्य नाटकों की अपेक्षा इसमें गद्य की न्यूनता, पद्य की प्रचुरता, विदूषक का अभाव एवं पात्रों की बहुलता ही इस नाटक की विशेषता है।

क्षेमीश्वर-(900 ई0)

इनके द्वारा रचित दो नाटक प्राप्त होते हैं।

नैषधानन्द

इस रूपक में नाटककार ने महाभारत के नलोपाख्यान का आधार लेकर सात अंकों में नल-दमयन्ती की कथा का वर्णन बड़े ही रोचक ढंग से किया है।

चण्डकौशिक

इस रूपक में नाटककार ने सत्यवादी हरिश्चन्द्र की पौराणिक कथा को मुख्य अंश बनाया है।

राज शेखर (10 वीं शताब्दी प्रारम्भ)

शेखर द्वारा रचित 4 नाटक प्राप्त होते हैं।

बाल रामायण

रामायण पर आधारित यह एक महानाटक है। नाटक के प्रारम्भ के तीन अंक में राम के व्यक्तित्व एवं धनुष यज्ञ का वर्णन है। बाद के अंकों में राम-परशुराम संवाद, सीताहरण, राम-रावण युद्ध तथा अन्त में राम के राज्य तिलक का वर्णन किया गया है। इसमें कल्पनाओं का भी समावेश किया गया है।

बाल भारत

यह अपूर्ण नाटक है। इसका कथानक महाभारत पर आधारित है। इसमें द्रौपदी विवाह तथा जुए के वर्णन के साथ-साथ, द्रौपदी चीर हरण का वर्णन नाटककार ने बड़े रोचक ढंग से किया है। इसमें केवल 2 अंक है।

विद्धशाल भञ्जिका

विद्धशाल भञ्जिका भी चार अंकों की नाटिका है। इसमें लाट के महाराज चंद्रवर्मा की पुत्री राजकुमारी मृगांकवली तथा सम्राट

विद्याधर मल्ल की प्रणय-कथा का समावेश है। सम्पूर्ण नाटिका प्रणय-प्रसंग से ओत-प्रोत है।

कर्पूरमंजरी

यह राजशेखर की सर्वोत्कृष्ट रचना है। यह एक सट्टक प्रकार का रूपक है। इसमें कुन्तलराज-राजकुमारी कर्पूरमंजरी तथा महाराज चण्डपाल की रोचक प्रणय कथा का समावेश है। इसमें कुल 4 अंक है।

दिङ्नाग

कुन्दमाला (1000 ई0 के लगभग)

'कुन्दमाला' की कथावस्तु का आधार वाल्मीकि रामायण का उत्तरकाण्ड तथा भवभूति का 'उत्तरामचरितम्' है। 6 अंको के इस नाटक में राम द्वारा सीता परित्याग की घटना से लेकर पुनर्मिलन तक की घटना को नाटककार ने बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है।

कृष्णमिश्र

प्रबोध-चन्द्रोदय (1100 ई0 के लगभग)

यह एक प्रतीक नाटक है। सम्पूर्ण नाटक में नाटककार ने अमूर्त भावों जैसे विवेक, मोह, ज्ञान, विद्या, बुद्धि, दम्भ, श्रद्धा, आदि को पुरूष और स्त्री भावों के रूप में प्रदर्शित किया है। नाटककार का उद्देश्य दार्शनिक तत्वों के साथ-साथ नाटकीय तत्वों का विवेचन करना है।

जयदेव-(12वीं शताब्दी)

प्रसन्न राघव

यह रामायण की कथा पर आधारित सात अंकों का नाटक है। नाटक के आरम्भ में रावण और बाणासुर दोनों ही सीता प्राप्ति को लेकर दु:खी एवं उपहासास्पद होते हैं। संपूर्ण नाटक में सीता स्वयंवर से लेकर रावण वध के उपरान्त राम के अयोध्या पहुँचने तक की कथा का वर्णन नाटककार ने रोचक ढंग से किया है।

वत्सराज (1163 से 1203 ई0 तक)

इनके द्वारा रचित 6 नाटक प्राप्त होते हैं।

कर्पूरचरित--

यह एक एकांकी भाण है। इसमें द्यूत का खिलाड़ी कर्पूर अपने रोचक अनुभवों का वर्णन करता है।

किरातार्जुनीयम्--

यह भारवि कवि के किरातार्जुनीयमं महाकाव्य के आधार पर उचित एकांकी व्यायोग है।

हास्य चूणामणि--

यह एक एकांकी प्रहसन है।

रूक्मिणी हरण--

महाभारत के आधार पर रचित 4 अंको का ईहामृग है।

त्रिपुरदाह--

यह एक डिम है। इसमें भगवान शंकर द्वारा त्रिपुरासुर की नगरी के विध्वंस होने का वर्णन किया गया है।

समुद्र मंथन--

यह एक समवकार है। इसमें देवता और राक्षस का समुद्र मंथन तथा रत्नों की प्राप्ति के बाद विष्णु लक्ष्मी का मंगल परिणय वर्णित है।

महाकवि भास से लेकर जयदेव तक के प्रमुख नाटककारों एवं नाटकों के अलावा इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कृतियों का निर्माण हुआ है, जो इस प्रकार है--

परवर्ती नाटककार (12वीं से 16वीं शती तक)

इस समय भी नाट्य साहित्य का सृजन होता रहा। यशचन्द्र ने मुदित कुमुदचन्द्र प्रकरण, कविराज शंखधर ने लटमेकल, महाराज विग्रहराज ने हरिकेलि, जैन रामचन्द्र ने नवविलास, राघवाभ्युदय, यादवाभ्युदय, निर्भयभीम, सत्यहरिश्चन्द्र कौमुदी मित्रानन्द तथा सुभट ने दूतांगद नाटक की रचना किया।

13वीं शताब्दी में राजा रूद्रदेव रचित उषर्गोदिय तथा ययाति चरित, जैनरामभद्ररचित प्रबुद्धरोहिणेय, मदन रचित पारिजात, जयसिंह सूरि रचित हम्मीर मर्दन, तथा यादव वंशीय रविवर्मा रचित प्रद्युम्नाभ्युदय इत्यादि

नाटक मुख्य रूप से लिखे गये।

14वीं शताब्दी में मनिक रचित भैरवानन्द, ज्योतिरीश्वर रचित धूर्तसमागम (प्रतीक) इत्यादि नाटक इस शती की मुख्य रचना है।

15वीं शताब्दी में व्यास रामदेव कृत रामाभ्युदय, पांडवाभ्युदय, तथा सुभद्रापरिणय, वामनभट्ट बाण कृत-पार्वती परिणय तथा जीवराम याज्ञिक कृत-मुरारि विजय नाटक इस समय में प्राप्त होते हैं।

16वीं शताब्दी में गोकुलनाथ रचित मुदित मदालसा तथा अमृतोदय, राजमाणिक्य देवरचित कुवलयाश्वचरित तथा विख्यात विजय, बालकवि रचित रन्तूकेतूदय तथा रविवर्मा विलास एवं विलिनाथ रचित मदन मंजरी महोत्सव आदि रचनाएं इस शताब्दी की मुख्य रचनाएं हैं।

17वीं शताब्दी में भूदेव शुक्ल ने धर्म विजय (प्रतीक नाटक), सठकोप ने वसन्तिका परिणय, कुमार ताताचार्य ने पारिजात नाटक, रामानुज ने वसुलक्ष्मी कल्याण, रामभद्र दीक्षित ने श्री रामचरित, भूमिनाथ ने चित्तवृत्ति, कल्प जीवमुक्ति कल्याण तथा भूमिनाथ ने श्रृंगार सर्वस्व आदि नाटकों की रचना की।

18वीं शताब्दी से आधुनिक काल तक। इस शताब्दी में जगन्नाथ ने सौभाग्य महादेव, आनन्दराय मरवी ने विद्यापरिणय, मलारी आराध्य ने शिवलिंग सूर्योदय, शंकर दीक्षित ने प्रद्युम्न विजय, राजकवि जगन्नाथ वसुमती परिणय, कृष्ण दत्त ने कुवलयाश्वीय, विश्वनाथ ने मृगांक लेखा, देवराज ने बाल मार्तण्ड विजयम्, वेंकटसुब्रह्मण्यम् ने वसुलक्ष्मी कल्याणम्, पुरूसूरि ने वसुमंगल, रामदेव ने विद्यामोद-तरंगिणी तथा विट्ठल ने आदिलशाह की रचना की।

19वीं शताब्दी में पद्मनाभ, बल्लिशाय कवि, विराट राघव, रामचन्द्र, महामाहोपाध्याय शंकर लाल, ईचम्बदी श्री निवासदास, सोंठी

भद्रादिराम शास्त्री, वैद्यनाथ वाचस्पति भट्टाचार्य, पेरीकाशीनाथ शास्त्री, श्री निवासाचारी, पंचानन, मूलशंकर माणिकलाल याज्ञिक, पंडित अंबिकादत्त इतयादि नाटककारों ने त्रिपुर विजयम्, ययाति तरूणनन्दनम्, रामराज्यभिषेक तथा बालिपरिणय, श्रृंगार सुधार्णव (भाण) सावित्री चरितं, भद्रयुवराज, वामन विजयम् तथा पार्वती–परिणय, श्रृंगार तरंगिणी तथा उषा परिणय, मुक्तावल चैत्रज्ञ, पांचालिका रक्षणम् तथा यामिनी पूर्णतिलकं, ध्रुवचरितं तथा क्षीराब्धिशयनं, अमरमंगल, छत्रपति साम्राज्य, प्रतापविजययं तथा संयोगिता स्वयंवर इत्यादि नाटकों की रचना की।

20वीं शताब्दी (आधुनिक युग) में वाई. महालिंग, शास्त्री रचित कलि प्रादुर्भाव नाटक इस सदी का प्रसिद्ध नाटक है। इसके अतिरिक्त नीर्पाजे भीम भट्ट, एस. एन. ताड़पत्री, महामाहोयाध्याय, पंडित मथुराप्रसाद दीक्षित आदि नाटककारों ने काश्मीर सन्धान समुधम्, विश्वमोहन और वीरप्रताप, शंकरविजयम्, पृथ्वीराज, भक्त सुदर्शन, गाँधी विजयनाटकम् तथा भारत विजय नाटकम् इत्यादि नाटकों की रचनाएं की, जो इस शताब्दी की सर्वोत्तम संस्कृत नाट्य रचनाएं मानी जाती हैं।

हिन्दी नाटकों की विकास परम्परा

प्राय: आचार्यो के मतानुसार संस्कृत साहित्य में ही नाटकों का जन्म माना जाता है। वेदों से ही नाटकों का प्रादुर्भाव माना जाता है। संस्कृत के सर्वप्रथम नाटककार भास, कालिदास, हर्ष, भवभूति, विशाखदत्त, भट्टनारायण आदि ने संस्कृत में नाटकों की रचना की और अमरयश प्राप्त किया संस्कृत में स्वप्नवासवदत्तम्, अभिज्ञान शाकुन्तलम् और उत्तररामचरितम् अत्यन्त प्रसिद्ध नाटक माने जाते है। संस्कृत साहित्य का ही उत्तराधिकार हिन्दी भाषा को प्राप्त हुआ। संस्कृत साहित्य में नाटकों का रचना काल 350 से 900 विक्रम तक माना जाता है। 1000 विक्रम संवत में देशी भाषाओं का जन्म हुआ और हिन्दी पद्य रचना, डिंगल, पिंगल, अवधी तथा ब्रजभाषा में 1900 तक होती रही। इसलिए इस दीर्घकाल में नाटकों का अभाव रहा। सन् 1900 हिन्दी साहित्य के लिए एक वरदान लेकर आया, इसमें कल्पवृक्ष के समान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ। भारतेन्दु जी ने ही इस युग में नवीन नाटकों का प्रसार किया।

हिन्दी के नाटकों का उद्गम् संस्कृत के अनुवादित नाटकों द्वारा हुआ। विद्वानों के मतानुसार संस्कृत से हिन्दी में अनुवादित 'प्रबोध चन्द्रोदय' हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक माना जाता है।

मौलिक नाटकों में आनन्द रघुनन्दन (महाराजा विश्वदेव) तथा नहुष नाटक (गोपालचन्द्र) मुख्य हैं। भारतेन्दु जी 'अथभाषा नाटक' लेख में महाराजा विश्वनाथ के ''आनन्द रघुनंदन'' और अपने पिता गिरधर दास (गोपालदास) के ''नहुष'' इन दो नाटकों को ही अपने से पूर्व माना है परन्तु नाटकीय नियमों की अवतारणा दोनों में अस्त-व्यस्त पाई जाती है। इसके पश्चात् राजा लक्ष्मण सिंह का अनूदित नाटक

"शकुन्तला" माना जाता है। तत्पश्चात् 'विद्यासुन्दर' अनूदित नाटक का स्थान माना गया है। नाटक की विकास परम्परा को मुख्य रूप से तीन कालखण्डों में विभाजित किया गया है ।

भारतेन्दु युग

भारतेन्दु द्वारा रचित "भारतदुर्दशा" नाटक में भारतेन्दु ने भारत का वास्तविक चरित्र चित्रित किया है। भारतेन्दु द्वारा रचित कुल नाटकों की संख्या 20 है। जिनमें से कुछ अनूदित, कुछ रूपान्तरित और कुछ मौलिक नाटक है। अनूदित रचनाओं में 'रत्नावली नाटिका' थानेश्वर के प्रसिद्ध राजा एवं कवि श्री हर्षदेव के संस्कृत नाटक का अनुवाद है। भारतेन्दु जी ने हिन्दी नाट्यकारों का ध्यान 'रत्नावली' के द्वारा संस्कृत नाटकों की ओर और 'विद्यासुन्दर' के द्वारा आधुनिक नाटकों की ओर आकर्षित किया। ये दोनों नाटक सामान्य रूपकों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। रत्नावली और विद्यासुन्दर की रचना के उपरान्त भारतेन्दु ने 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तृतीय अंक का हिन्दी अनुवाद किया। मानसिक वृत्तियों को पात्र मानकर कृष्णमिश्र द्वारा लिखा गया 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक अपनी कोटि में सर्वश्रेष्ठ परिगणित होता है।

भारतेन्दु के अनूदित नाटक

पाखण्ड विडम्बन-(सं0 1929 वि0)

यह प्रबोध चन्द्रोदय के तीसरे अंक का अनुवाद है। इस नाटक में श्रद्धा, शान्ति और करूणा आदि मानसिक भावों का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है।

धनंजय विजय-(सं0 1930 वि0)

यह कंचन कविकृत संस्कृत के नाटक का अनुवाद है। इसका कथानक महाभारत से लिया गया है। इसमें पांडवों के अज्ञातवास तथा विराट की कन्या का अभिमन्यु के साथ विवाह का वर्णन है।

कर्पूर मञ्जरी-(सं0 1932 वि0)

यह राजशेखर रचित एक सट्टक है। संस्कृत में सात सट्टक प्रसिद्ध है, उनमें शैली की दृष्टि से सबसे विख्यात कर्पूरमञ्जरी ही है। सट्टक वास्तव में एक नाटिका है यह आद्योपरान्त प्राकृत भाषा में लिखी जाती है। भारतेन्दु जी ने इस नाटक के अनुवाद का उद्देश्य 'भरतवाक्य' में स्पष्ट कर दिया है।

> उन्नति चित्त हैं आर्य परस्पर प्रीति बढ़ावै,
> कपट नेह तजि सहज सत्य व्यवहार चलावैं।।60

मुद्राराक्षस-(सं0 1935 वि0)

यह नाटक संस्कृत के अति प्रसिद्ध नाटककार विशाखदत्त के मुद्राराक्षस का अनुवाद है। यह नाटक राजनीतिक समस्या से ओत-प्रोत है। इसका अनुवाद मौलिक सा प्रतीत होता है जो उत्तम और प्रमाणिक है।

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY
University of Baroda

दुर्लभबन्धु-(सं0 1937 वि0)

प्रस्तुत नाटक शेक्सपियर के Merchant of Venice का अनुवाद है। भारतेन्दु जी ने मूल नाटक के पात्रों का नामकरण भारतीय ढंग से किया है। शेक्सपियर के Shylock को शैलाक्ष, Bassanio को वसन्त, Antonio को अनन्त, Poretia को पुरश्री, Larngo को लवंग और Jessica को जसोदा बना दिया है। परन्तु मूल नाटककार के भावों में भारतेन्दु जी ने कोई परिवर्तन नहीं आने दिया है। विदेशी नाटकों के अनुवाद की जो पद्धति भारतेन्दु जी ने चलाई उसकी आशातीत प्रगति भी हुई।

भारतेन्दु के रूपान्तरित नाटक

विद्यासुन्दर

भारतेन्दु जी ने इस नाटक के विषय में स्वयं लिखा है कि ''विद्यासुन्दर'' की कथा वंगदेश में अतिप्रसिद्ध है। प्रसिद्ध कवि भरतचन्द्रराय ने इस उपाख्यान को बंग-भाषा में काव्य की रचना की थी। महाराज यतीन्द्र मोहन ने उसी काव्य का अवलंबन करके विद्यासुन्दर नाटक बनाया था, उसी की छाया से यह निर्मित हुआ है।''61

सत्य हरिश्चन्द्र-(सं0 1932 वि0)

इस नाटक में कुल 4 अंक है। भारतेन्दु जी को सबसे ज्यादा ख्याति 'सत्य हरिश्चन्द्र' से प्राप्त हुई है। यह भारतेन्दु जी की

अत्यन्त प्रसिद्ध और प्रौढ़ रचना है। कुछ विद्वान इस रचना को मौलिक मानते हैं, लेकिन कुछ में मतभेद है। बाबू श्यामसुन्दरदास और बाबू ब्रजरत्नदास इसे भारतेन्दु की मौलिक रचना मानते हैं किन्तु रामचन्द्र शुक्ल ऐसा नहीं मानते हैं। डॉ0 सोमनाथ गुप्त ने चण्डकौशिक और हरिश्चन्द्र के नाटकों की तुलना करके कहा है कि- "अपनी संपूर्ण स्थिति में सत्य हरिश्चन्द्र न तो एकदम मौलिक ही है, न बिल्कुल अनुवाद ही। यदि हम इसे रूपान्तरित मान लें तो किसी प्रकार के विवाद के लिए स्थान नहीं रह जाता। इसमें लेखक की मौलिकता अधिक है और अनुवाद की मात्रा कम।"62

भारतेन्दु के मौलिक नाटक

प्रेम जोगिनी-(सं0 1932)

यह एक अपूर्ण नाटिका है, जिसका विषय काशी के धार्मिक समाज में प्रचलित पाखंड का प्रदर्शन है।

चन्द्रावली-(सं0 1933)

यह भी एक नाटिका है। इसका मुख्य विषय भगवद्भक्ति है और इसमें श्रृंगार रस प्रधान है। विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता और कविता की पर्याप्त मात्रा है। मौलिक नाटकों में श्रेष्ठ इस नाटिका में कुल 4 अंक तथा 1 विषकम्भक हैं। सम्पूर्ण नाटिका में आद्योपरान्त जिस प्रेमतत्व का निरूपण किया गया है उसके द्वारा भारतेन्दु जी ने आदर्श कृष्ण प्रेम की स्थापना की है।

भारत दुर्दशा-(सं0 1937)

इस नाटक में कुल 6 अंक है। इसमें भारत के प्राचीन गौरव की स्मृति को, और उसकी वर्तमान दशा बताकर भारत के उद्धार की प्रेरणा दी गयी है। इस नाटक में मध्यम वर्ग, कलाविद् तथा पण्डित प्रेक्षकों के अनुकूल विचार शैली का उपयोग किया गया है। यह एक प्रतीकात्मक नाटक (ALLEGORICAL PLAY) है।

भारत जननी-(सं0 1934 वि0)

भारतेन्दु जी ने इसे ओपेरा कहा है (OPERA) और वास्तव में यह ऐसा ही है। इसमें एक ही दृश्य है और सारा कार्य व्यापार उसी से आरम्भ होकर समाप्त हो जाता है। यह नाटक राष्ट्र प्रेम की भावना से परिपूर्ण है, यह नाटक बंगला का अनुवाद है।

नीलदेवी-(सं0 1938)

यह एक वियोगात्मक ऐतिहासिक गीति रूपक है। इसमें मुसलमानों की चालाकी और उनकी नीचता का दृश्य अंकित है। भारतेन्दु जी इसके पूर्व न तो किसी मुस्लिम राज्य काल की ऐतिहासिक घटना लेकर नाटक की रचना की थी, और न स्त्रियों के वीरत्व का उल्लेख किया था। संभवत: इन दोनों अभावों न इस नाटक सृजन की प्रेरणा दी है। नाटक के प्रारम्भ में दुर्गा पाठ के मन्त्र हैं तदुपरान्त समर्पण इस प्रकार है-"मातृ भगिनी-सखी-तुल्या आर्य ललना गण को।"

सती प्रताप

इसमें सावित्री और सत्यवान की कथा के आधार पर सती का प्रताप दिखाया गया है। भारतेन्दु जी इस नाटक को पूरा न कर सके, उनके फुफेरे भाई बाबू राधाकृष्ण ने इसकी पूर्ति की।

प्रहसन

भारतेन्दु ने नाटकों के अतिरिक्त कुछ प्रहसन भी लिखे है। इनके प्रहसनों को लिखने का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक बुराइयों को दूर करना था। इन्होंने कुल 3 प्रहसन लिखे है जो निम्न हैं।

वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति (सं. 1930)

इस प्रहसन में भारतेन्दु जी ने मांस-भक्षियों की जिह्वा लोलुपता, रसास्वादन के लिए धार्मिकता के नाम पर करारा व्यंग्य किया है। साथ ही साथ इस नाटक में प्रहसन के रूप में मांसाहारी पुरोहित का उत्साह से यज्ञ करना एवं शैव-वैष्णवों का मांस खाने को लालायित होना दिखाकर पाखण्डियों पर व्यंग्य किया गया है।

विषस्य विषमौषधम् (सं. 1933)

यह एक रूपक का भेद मात्र है, इसमें बड़ौदा के महाराज मल्हार राव गायकवाड़ के गद्दी पर उतारे जाने की घटना अंकित की गयी है। इसमें ''शठे शाठ्यं समाचरेत'' की नीति प्रकट की गयी है।इस रचना के

कारण भारतेन्दु जी की राष्ट्र   ीयता पर आलोचकों ने दोषारोपण करते हुए कहा है कि – "विदेशी सरकार द्वारा एक राजा के राजच्युत होने पर हर्ष मानना कहाँ की राष्ट्र   ीयता है।"64 इसका उत्तर देते हुए भारतेन्दु जी कहते हैं कि 'विष की औषध विष है।' अर्थात देशी राजाओं के अत्याचार को मिटाने का जो उपचार है वह भी तो विष है।

अन्धेर नगरी (सं. 1938 वि0)

इस में कुल 6 अंक है। इस रचना में एक ऐसे राजा का चित्रण हुआ है, जिसके राज्य में कोई न्याय-व्यवस्था नहीं है, यह भी तत्कालीन शासन पर व्यंग्य पूर्ण रचना है। कलात्मक दृष्टि से 'विषस्य विषमौषधम् तथा अंधेर नगरी दोनों प्रहसन उत्तम कोटि में आते हैं। भारतेन्दु जी ने इस प्रहसन के माध्यम से ग्रामीण जनता द्वारा प्रयुक्त अश्लील शब्दों को हटाकर उन्हीं के घरों में बोले जाने वाले कृष्ण मुरारी, श्याम सलोना जैसे शब्दों का प्रयोग किया है--

चूरन अमल वेद का भारी। जिसको खाते कृष्ण मुरारी।।
मेरा पाचक है पचलोना। जिसको खाता श्याम सलोना।।65

इस नाटक द्वारा ग्रामीण जनता ने आद्योपरान्त जितना हास्य विनोद पाया, उतना ही राष्ट्र   ीयता का पाठ भी अनजाने ही सीख लिया। इस नाटक द्वारा ग्रामीण जनता का जितना उपकार हुआ उतना कदाचित ही अद्यावधि किसी अन्य नाटक द्वारा हुआ होगा।

इस प्रकार भारतेन्दु द्वारा हिन्दी नाट्य-साहित्य को उन्नत और विकसित होनें में बड़ी सहायता मिली। भारतेन्दु के समकालीन नाटककारों

में पं0 बद्रीनारायण चौधरी, 'प्रेमधन, प्रधान कलाकार थे। 'भारत-सौभाग्य' वीरांगना-रहस्य' तथा प्रयाग रामवनगमन आदि इनके प्रसिद्ध नाटक है। आपके कुल 40 प्रहसन है, भारतेन्दु काल में प्रेमघन ही सर्वोच्च प्रहसन लेखक हुए हैं।

भारतेन्दु युग के प्रमुख नाटककार-

-पं. अम्बिकादत्त व्यास-

व्यास जी ने गोसंकट नाटक, ललिता नाटिका, भारत-सौभाग्य नाटक और वेणी संहार नाटक की रचना की। इनकी भाषा तथा शैली प्राचीन परम्परा से प्रभावित है।

-पं. प्रतापनारायण मिश्र-

मिश्र जी ने गद्य साहित्य के अतिरिक्त नाटक के क्षेत्र में कलिकाल रूपक, कलिप्रभाव, हठी-हमीर, जुवारी खुवारी आदि रचनाएं की हैं।

-लालाश्री निवासदास-

इन्होंने अपने नाटकों में कौतूहलता को बरकरार रखते हुए ऐतिहासिकता का परिचय दिया है। संयोगिता स्वयंवर रणधीर-प्रेम मोहिनी, तप्तासंवरण आदि इनकी प्रमुख रचनाएं है। इनकी भाषा साधारण बोलचाल की है।

पं. बालकृष्ण भट्ट-

भट्ट जी ने पद्मावती, शर्मिष्ठा, चन्द्रसेन, दमयन्ती स्वयंवर, वेणीसंहार, जैसा काम वैसा परिणाम आदि नाटक लिखे हैं। इनकी भाषा साहित्यिक है, इनके द्वारा रचित नाटकों में से कुछ नाटक तो मौलिक हैं, कुछ अनुवाद किये गये है। इनके द्वारा रचित अप्रकाशित नाटक भी प्राप्त होते है जो इस प्रकार हैं- किरातार्जुनीयम, पृथुचरित्र, शिशुपाल वध, नलदमयन्ती, शिक्षा-दान, आचार-विडम्बन आदि।

-राधाचरण गोस्वामी-

इनके द्वारा लिखित सती चन्द्रावली, अमर सिंह राठौर और श्री दामा नाटक है तथा बूढ़े मुँह मुँहासे, तन-मन-धन, गोसाई जी के अर्पण, भंग-तरंग ये प्रहसन है। पात्रों के चरित्र-चित्रण पर ध्यान नहीं दिया गया है। अमर सिंह राठौर भी वीर रस का ऐतिहासिक नाटक है।

-राधाकृष्ण दास-

यह भारतेन्दु जी के फुफेरे भाई थे। इन्होंने महारानी पद्मावती, धर्मालाप, महाराणा प्रताप सिंह आदि नाटक लिखे है। ऐतिहासिक पात्रों का चरित्र-चित्रण इनके नाटकों में देखने को मिलता है। भारतेन्दु काल के नाटककारों में राधाकृष्णदास का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है।

किशोरीलाल गोस्वामी-

इन्होंने मयंक-मञ्जरी, नाट्यसंभव तथा चौपट-चपेर (प्रहसन) नाटकों की रचना की है। इनके नाटकों में समाज सुधार की भावनाएं देखने को मिलती हैं।

नाटक की विकास परम्परा में भारतेन्दु के पश्चात् महावीर द्विवेदी युग का आरम्भ हुआ। इस काल के प्रसिद्ध नाटककारों में पं. सत्यनारायण कविरत्न, लाला सीताराम बी. ए., रायदेवी प्रसाद पूर्ण, पं. रूपनारायण पाण्डेय और गोपालदास गहमरी आदि है।

सत्यनारायण कविरत्न ने संस्कृत के 'उत्तर-रामचरितं' का, लालासीताराम बी.ए. ने 'मृच्छकटिकम्' का और शेक्सपियर के हेमलेट एवं मेकवेथ का तथा रूप नारायण पाण्डेय ने बंगला के नाटकों का अनुवाद किया।

प्रसाद युग

इसके पश्चात् सन् 1916 में लखनऊ कांग्रेस अधिवेशन में सर्वदलों ने सम्मिलित होकर उत्तरदायी शासन की माँग की परन्तु शासन के बदले सन् 1919 में रोल्ट ऐक्ट लाद दिया गया फलस्वरूप जलियावाला बाग हत्याकाण्ड हो जाने से सारी जनता में असन्तोष की लहर पैदा हो गयी इन्हीं दिनों प्रसाद जी कवि के रूप में हिन्दी क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, और उन्होंने सज्जन, कल्याणी, परिणय, करूणालय, प्रायश्चित, कथाश्री, राजश्री, विशाख, अजातशत्रु, कामना, जनमेजय, का नागयज्ञ, स्कन्द-गुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी और एक घूँट आदि नाटकों

के माध्यम से नाट्य साहित्य को विकास की एक नई दिशा प्रदान की। भाव,भाषा, विचार अन्वेषण तथा अध्ययन से प्रसाद के नाटक पूर्ण थे।

प्रसाद जी के युग में नाटकों की एक बाढ़ सी आ गयी। प्रसाद युग हिन्दी नाट्य साहित्य का 'स्वर्णयुग' कहलाता है।

प्रसाद युग के नाटक एवं नाटककार

इस युग के मुख्य नाटककार जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, मैथिलीशरणगुप्त, प्रेमचन्द्र, बदरीनारायण भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, सुदर्शन गोविन्द वल्लभ पन्त और लक्ष्मी नारायण मिश्र है। जगन्नाथप्रसाद मिलिंद ने ऐतिहासिक नाटक 'प्रताप प्रतिज्ञा की रचना की है। गुप्त जी के अनघ, चन्द्रहास और तिलोत्तमा नाटक प्रसिद्ध है। भट्ट जी के तुलसीदास, वेनीचरित्र, दुर्गावती तथा पन्त का वरमाला और मिश्र जी के समस्या मूलक नाटकों में राजमुकुट, सिन्दूर की होली, सन्यासी, अशोक, राक्षस का मन्दिर आदि साहित्य के अमूल्य रत्न है।

प्रसादोत्तर-युग

इस युग में हरिकृष्ण प्रेमी, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद, उपेन्द्रनाथ अश्क, सेठ गोविन्ददास, डॉ. राम कुमार वर्मा इत्यादि मुख्य नाटककार हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र-

मिश्र जी को समस्या नाटकों का जनक माना जाता है इनके द्वारा रचित अशोक सन्यासी, गरूणध्वज, आधी रात, वितस्ता की लहरें, वत्सराज, राक्षस का मंदिर इत्यादि कई नाटक हैं जिनमें से कुछ ऐतिहासिक तथा कुछ सामाजिक एवं समस्यामूलक नाटक हैं।

हरिकृष्ण प्रेमी-

इन्होंने विषपान, रक्षाबन्धन, शिवसाधना, स्वप्न भंग, मन्दिर और आहुति आदि नाटक रचे हैं। इनके द्वारा रचित सभी नाटक रंगमंचीय है।

उदयशंकर भट्ट-

भट्ट द्वारा रचित सगरविजय, मत्स्य गंधा, विश्वामित्र, राधा, अन्तहीन अन्त, तथा विक्रमादित्य इत्यादि नाटक और स्त्री का हृदय, समस्या का अन्त इत्यादि एकांकी नाटक प्रसिद्ध है।

उपेन्द्रनाथ अश्क-

इनके द्वारा रचित अधिकार का रक्षक उड़ान, जय-पराजय तथा आपस का समझौता आदि प्रसिद्ध नाटक है।

सेठ गोविन्ददास-

इन्होंने सप्तरश्मि, पंचभूत तथा चतुष्पथ एवं रामकुमार वर्मा

ने पृथ्वीराज की आँखें चारूमित्रा, विभूति और सप्तकिरण इत्यादि एकांकी संग्रह की रचना की। इनके अतिरिक्त पंत, कैलाशनाथ भटनागर, चन्द्रगुप्त-विद्यालंकार और गणेशदत्त द्विवेदी आदि प्रमुख नाटककार हैं।

उपर्युक्त नाटककारों ने नाट्य-साहित्य की दीर्घकालीन परम्परा को बरकरार रखते हुए समस्यामूलक नाटक, सांस्कृतिक नाटक, गीतिनाट्य, नया नाटक और अस्तित्ववाद तथा एकांकी (रूपक) नाटक जैसी विधा को लेकर नाट्य साहित्य में जो योगदान दिया वह अविस्मरणीय रहेगा।

समस्यामूलक नाटक

समस्या नाटक के आधुनिक जन्मदाता पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र जी माने जाते हैं। उन्होंने इस पद्धति का पहला नाटक 'सन्यासी' सन् 1927 ई0 में लिखा, राक्षस का मन्दिर, मुक्ति का रहस्य, सिन्दूर की होली, आधीरात, राजयोग आदि मिश्र जी द्वारा रचित प्रमुख समस्या नाटक है।

इसके अतिरिक्त वृन्दावन लाल वर्मा ने बॉस की फॉस, पीले हाथ, लो भई पंचो लो, उपेन्द्र नाथ अश्क ने छठा बेटा, कैद और उड़ान, सेठ गोविन्ददास ने राजनीति को आधार मानकर सेवा पथ, धीरे-धीरे, पं. गोविन्दवल्लभ पंत ने अंगूर की बेटी, वृन्दावन लाल वर्मा ने खिलौने की खोज आदि नाटक लिखे।

सांस्कृतिक नाटक

भारतेन्दु जी ने अपने ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्र ीय भावना के साथ-साथ तत्कालीन सांस्कृतिक चेतना की ओर भी संकेत किया है। भारतेन्दु के दिवंगत होने पर भी उस युग के नाटककारों ने भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए और भारतीय संस्कृति के प्रवाह को अवरुद्ध करने वाले बाल-विवाह, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, बहु-विवाह, आदि कुप्रथाओं को समाप्त करने का प्रयास अपने नाटकों के माध्यम से करते रहे। इस युग के नाटककारों ने सांस्कृतिक चेतना प्रधान नाटकों की रचना की। हरिकृष्ण प्रेमी ने रक्षा-बन्धन, शिवासाधना, प्रतिशोध, स्वप्न भंग तथा आहुति सेठ गोविन्ददास ने हर्ष, उग्र ने शेरशाह तथा कुलीनता सियाराम शरण गुप्त ने पुण्य-पर्व, उदयशंकर भट्ट ने शक विजय, वृन्दावन लाल वर्मा ने पूर्व की ओर, हंस मयूर पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र ने गरूणध्वज, नारद की वीणा, दशाश्व मेघ, वत्सराज, वितस्ता की लहरें आदि सांस्कृतिक नाटक लिखे।

मैलिक रचनाओं के अतिरिक्त कुछ अनूदित सांस्कृतिक नाटक भी प्राप्त होते हैं। आलोच्य काल में सांस्कृतिक नाटकों के विकास में यूरोपीय नाटकों से भी सहायता ली गयी। अनूदित नाटकों में जर्मन नाटककार लेसिंग के दो नाटकों 'मिना' और 'नातन' का हिन्दी अनुवाद किया गया। मंगलदेव ने मिना और अबुल फजल ने नातन का हिन्दी अनुवाद किया। प्रसाद युग में भी सांस्कृतिक नाटक लिखे गये,, प्रसाद के चन्द्रगुप्त का प्रभाव तत्कालीन नाटककारों पर पूर्णरूपेण पड़ा और राष्ट्र प्रेम, धार्मिक-साहिष्णुता, भारतीय संस्कृति की महत्ता दिखाने वाले नाटकों की धूम मच गयी। माखनलाल चतुर्वेदी, हरिकृष्ण प्रेमी, रामवृक्ष

वेनीपुरी, गोविन्दवल्लभ पन्त, मैथिलीशरण गुप्त आदि के अलावा लक्ष्मीनारायण मिश्र और भुवनेश्वर जैसे नाटककारों ने भी इसमें पूर्ण योगदान दिया।

गीतिनाट्य

हिन्दी साहित्य में काव्यरूपक की परम्परा अपभ्रंश साहित्य से उद्भुत हुई, मध्ययुग के कवियों ने पद्यरूपक लिखने का प्रयास किया। अठारहवीं शताब्दी के बाद इसका विरोध हुआ और उन्नीसवीं शताब्दी में गद्य नाटकों का प्रचलन हुआ। 20वीं शताब्दी में पुनः प्रसाद ने नाटक में पद्य शैली को पुनःजीवित किया। उन्होंने रोला, उल्लाला, छप्पय आदि छन्दों के माध्यम से 'करूणालय' नामक गीति नाट्य लिखा। इसी से गीतिनाट्य का प्रारंभ भी माना जाता है ।प्रसाद ने 'करूणालय' में गीति नाट्य की जो शैली प्रचलित की उसका विकास इस काल के अन्य गीति नाट्यों में दिखलाई पड़ता है।

उदयशंकर भट्ट ने कालिदास, मत्स्य गंधा, विश्वामित्र और राधा, मौथिलीशरण गुप्त ने 'अनघ' सियाराम शरणगुप्त ने 'उन्मुक्त' आदि नाटकों के साथ-साथ आधुनिक पद्यरूपकों में दिनकर का 'महिमा' पन्त का अप्सरा, रजत-शिखर, फूलों का देश, उत्तरशती, शुभ-पुरूष, ध्वंसशेष, भगवती चरण वर्मा का कर्ण, महाकाल तथा द्रौपदी आदि इस श्रेणी के प्रसिद्ध गीति नाट्य है। धर्मवीर भारती का अंधायुग, निराला का पंचवटी प्रसंग गिरिजाकुमार का इन्दुमती आदि इस युग की प्रसिद्ध कृतियां हैं। केदारनाथ मिश्र, जानकी वल्लभ शास्त्री इत्यादि ने भी गीति नाट्यों की रचना की है। गीतिनाट्यों की संख्या शताधिक पहुँच चुकी है। अद्यावधि विरचित गीतिनाटकों में दिनकर का उर्वशी नाटक सर्वश्रेष्ठ

गीतिनाट्य है।

रेडियो नाटक

नाटक की अन्य विधाओं के साथ ही साथ रेडियो काव्य रूपकों की परम्परा का भी विकास हुआ जिसमें आरसी प्रसाद सिंह, प्रभाकर माचवे, जानकी वल्लभ शास्त्री, हंस कुमार तिवारी, सिद्धनाथ कुमार, दुष्यन्त कुमार, भारत-भूषण आदि लेखकों ने नवोन्नमंगल, विन्ध्याचल गंगावतरण, उर्वशी अग्नि देवता, (शकुन्तला, मेघदूत, कथ-देवयानी) आरावाली की यात्रा, एक कंठ विषपायी, अग्निलोक आदि आधुनिक ढंग के रूपकों की रचना की। डॉ. दशरथ ओझा ने रेडियो नाटक के मुख्य 9 भेद माने हैं । 1- रेडियो रूपक 2-फीचर 3- ध्वनि नाट्य (मनोवैज्ञानिक) 4- स्वोक्ति 5- फेंटसी (भवनाट्य या ऋतु संबंधी) 6- ध्वनिगीत रूपक 7- रिपोर्ताज 8- जननाटक 9- व्यंग्य ।

एकांकी नाटक

ऐतिहासिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, समस्या नाटक, गीतिनाट्य इत्यादि के साथ-साथ एकांकी नाटकों का भी विकास हुआ, संस्कृत में जो कतिपय रूपक एक अंक में समाप्त हो जाते हैं उसे एकांकी की संज्ञा दी गयी। 'डॉ. कीथ' ने भी एक अंक में समाप्त होने वाले इन नाटकों को एकांकी (One Act Play) की संज्ञा दी है।

एकांकी नाट्यकारों में डा. रामकुमार वर्मा का नाम सर्वप्रथम है, इनके द्वारा रचित एकांकी संग्रह पृथ्वीराज की आँखे, रेशमी टाई, चारूमित्रा आदि है। इनके आतिरिक्त उपेन्द्रनाथ अश्क, गणेश प्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन, शास्त्री, भगवती चरण वर्मा, सद्गुरू चरण अवस्थी, विष्णुप्रभाकर इत्यादि ने भी इस परम्परा को बढ़ाने का प्रयास किया है।

तुलनात्मक अनुशीलन :---

संस्कृत और हिन्दी के नाटकों की अवधारणाओं तथा उसके विकासात्मक पहलुओं की चर्चा करके उनका विवेचनात्मक अध्ययन ऊपर किया जा चुका है। यहाँ पर संस्कृत और हिन्दी नाटकों का संक्षिप्त रूप में तुलनात्मक अनुशीलन किया जा रहा है। 'नाटक' शब्द संस्कृत साहित्य में 'रूपक' के नाम से जाना जाता है। बाद में यही 'रूपक' हिन्दी में नाटक के रूप में प्रयुक्त होने लगा। रूपक के दस भेद माने गये हैं, यथा--

''नाटकं सप्रकरणं भाणः प्रहसनं डिमः,
व्यायोग समवकारौ वीथ्यंकेहामृगा इति।''

जब कि नाटक रूपकों का भेद मात्र है। संस्कृत के रूपक एवं हिन्दी के नाटक को ही आंग्ल भाषा में ड्रामा (Drama) शब्द से भी अभिहित किया गया है।

आचार्य भरतमुनि ने नाटक को पंचम वेद माना है। नाट्य वेद की रचना भरतमुनि ने चारों वेदों से रसादि तत्त्व (ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्वेद से रस) का संग्रह करके खासकर निम्नवर्गों के लिए किया। जिसके लिए वेद वर्जित था। इसका प्रयोजन था --

''दुखार्त्तानां श्रमर्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्
विश्रन्ति जननं काले नाट्यमेत मया कृतम्॥''

नाटक शब्द संस्कृत से ही अवतरित हुआ है। नाटक की उत्पत्ति ''नट्'' धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ है--सात्त्विक भावों का प्रदर्शन। यही कारण है कि अभिनय को ही नाटक कहा जाता है - ''अवस्थानुकृतिर्नाट्यं''। सामान्यतः नाटक शब्द संस्कृत के ''नट'' धातु से बना माना जाता है। कहा जाता है कि '' नट'' नामक एक जाति है जो

एक स्थान से दूसरे स्थान पर विचरण करती रहती है उसी के आधार पर नाटक का नामकरण माना जाता है।

इस प्रकार नाटक शब्द का निर्माण जाति विशेष के आधार पर हुआ माना जाता है। संस्कृत में इसकी अवधारणा भरतमुनि रचित नाट्यशास्त्र के आधार पर प्रतिपादित की गयी है और हिन्दी साहित्य में उसी संस्कृत अवधारणा से इसका उद्भव हुआ माना जाता है। दोनों की अवधारणाओं में कोई उल्लेखनीय अन्तर प्राप्त नहीं होता है।

हिन्दी नाट्य साहित्य में नाटक का आगमन सर्वप्रथम संस्कृत से हिन्दी में अनूदित 'प्रबोधचंद्रोदय' से माना जाता है। संस्कृत नाटकों के हिन्दी में रूपांतरण से ही हिन्दी नाट्य साहित्य का श्रीगणेश हुआ। संस्कृत नाटकों के अनुवाद के पश्चात् हिन्दी में नाटक लिखने की परंपरा शुरू हुई। हिन्दी में महाराजा विश्वदेव का आनंद रघुनंदन तथा भारतेन्दु के पिता गिरधर दास का 'नहुष' नाटक को ही विद्वानों ने प्रथम मौलिक नाटक स्वीकार किया है। कहीं-कहीं पर संस्कृत नाटकों की पूर्ण छाया हिन्दी नाटकों में देखी जा सकती है। हिन्दी गद्य के पुरोधा माने जाने वाले भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने हिन्दी में नाटक जैसी एक नवीन एवं सशक्त विधा का सूत्रपात किया। तत्पश्चात् प्रसाद एवं प्रसादोत्तर नाटककारों ने इस विधा को अद्यावधि अपने-अपने ढंग से बढ़ाया।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नाटक के उद्भव एवं अवधारणाओं को लेकर, नाटक की परिभाषा एवं स्वरूप को लेकर कोई खास अन्तर परिलक्षित नहीं होता। कमोवेश रूप में संस्कृत एवं हिन्दी नाट्य साहित्य में उपर्युक्त तत्व समान रूप से परिलक्षित होते हैं।

सन्दर्भ :---

1- साहित्य दर्पण--6-1, आचार्य विश्वनाथ

2- दशरूपक-धनंजय-1/4/6

3- दशरूपक-धनंजय- 1/8/5

4- दशरूपक-धनंजय- पृ. 4

5- दशरूपक-धनंजय- 1/9

6- दशरूपक-धनंजय- 1/9

7- दशरूपक-धनंजय- 1/9

8- तत्राधिकारिकम्मुख्यमंगम् प्रासंगिकम् विदु: दशरूपक- धनंजय- 1/18

9- दशरूपक-धनंजय- 1/18

10- दशरूपक-धनंजय- पृ. 87

11- दशरूपक-धनंजय- 1/19

12- दशरूपक-धनंजय- 1/24

13- दशरूपक-धनंजय- 2/1

14- दशरूपक-धनंजय- 2/2

15- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि

16- दशरूपक-धनंजय- पृ. 4

17- दशरूपक-धनंजय- 1/4/7

18- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/4, पृ. 2

19- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/11, पृ. 4

20- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/15, पृ. 5

21- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/17, पृ. 6

22- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/18, पृ. 7

23- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/115, पृ. 28

24- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/118, पृ. 28

25- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/17, पृ. 6

26- भारतीय नाट्यपरंपरा अभिनय दर्पण - वाचस्पति गैरोला , पृ. 58

27- भारतीय नाट्यपरंपरा अभिनय दर्पण - वाचस्पति गैरोला , पृ. 345

28- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, सं0 बब्बूलाल शुक्ल, भूमिका से ।

29- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, सं0 बब्बूलाल शुक्ल, भूमिका से ।

30- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, सं0 बब्बूलाल शुक्ल, भूमिका से ।

31- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, सं0 बब्बूलाल शुक्ल, भूमिका से ।

32- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, सं0 बब्बूलाल शुक्ल, भूमिका से ।

33- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, सं0 बब्बूलाल शुक्ल, भूमिका से ।

34- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, सं0 बब्बूलाल शुक्ल, भूमिका से ।

35- दशरूपक-धनंजय- 1/7

36- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/104

37- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/16

38- रामायण - 2/67/15

39- रामायण -2/69/4

40- रामायण -1/18/18

41- महाभारत -1/51/15

42- महाभारत -2/12/36

43- महाभारत -2/15/13

44- अष्टाध्यायी-4/3/110

45- अष्टाध्यायी-4/3/111

46- महाभाष्य -3/2/111

47- द डेवलपमेंट ऑफ ड्रामेटिक आर्ट् -डानल्ड क्लाइव स्टुअर्ट , पृ01

48- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/104
49- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/112
50- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 21/125
51- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 21/123
52- दशरूपक-धनंजय- 1/7
53- नाट्यशास्त्र - भरतमुनि, 1/107
54- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ0 5
55- हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर - मैकडानल, पृ0 346
56- संस्कृत और हिंदी नाटक : रचना एवं रंगकर्म-डॉ0 जलज, पृ0 47
57- संस्कृत के ऐतिहासिक नाटक -श्याम शर्मा , पृ0 6
58- मालविकाग्निमित्रम् -कालिदास -प्रस्तावना
59- हर्षचरित -वाणभट्ट
60- भारतेन्दु नाटिकावली - पृ0 163
61- विद्यासुन्दर नाटक - भारतेन्दु -भूमिका
62- हिंदी नाटकसाहित्य का इतिहास - डॉ0 सोमनाथ गुप्त- 48-49
63- नीलदेवी - भारतेन्दु -भूमिका
64- भारतेन्दु नाटिकावली - भूमिका
65- भारतेन्दु नाटिकावली - पृ0 690
66- भारतेन्दु नाटिकावली - पृ0 163
67- भारतेन्दु नाटिकावली - पृ0 163